श्री नेमि-लावण्य दक्ष-सुशील ग्रन्थमाला रत्न ५८ वां

पूर्वाचार्यविरचित

श्री कुलक संग्रह

[हिन्दी सरलार्थ युक्त]

श्री कुलक संग्रह सरलार्थ के कर्त्ता
जैनधर्मदिवाकर शासनरत्न-तीर्थप्रभावक--राजस्थान-
दीपक-मरुधरदेशोद्धारक-शास्त्रविशारद-साहित्यरत्न
कविभूषण पूज्यपाद-आचार्यदेव
श्रीमद् विजयसुशीलसूरीश्वरजी म० सा०

प्रकाशक :
आचार्य श्रीसुशीलसूरि जैन ज्ञानमन्दिर
शान्तिनगर-सिरोही [मारवाड़] राजस्थान

श्री नेमि-लावण्य-दक्ष-सुशील ग्रन्थमाला रत्न ५६ वां

पूर्वाचार्य विरचित

श्री कुलक संग्रह

[हिन्दी सरलार्थ युक्त]

'श्री कुलक संग्रह सरलार्थ' के कर्त्ता-

शासनसम्राट्-सूरिचक्रचक्रवर्त्ति--तपागच्छाधिपति-महाप्रभावशाली--अखण्डब्रह्मतेजोमूर्त्ति--परमपूज्य-आचार्य-महाराजाधिराज **श्रीमद् विजयनेमिसूरीश्वरजी म. सा.** के पट्टालंकार-साहित्यसम्राट्-व्याकरणवाचस्पति-शास्त्रविशारद-कविरत्न-परमपूज्य-आचार्यप्रवर **श्रीमद् विजयलावण्यसूरीश्वरजी म. सा.** के पट्टधर-धर्मप्रभावक--कविदिवाकर--शास्त्रविशारद--व्याकरण रत्न-परमपूज्य-आचार्यवर्य **श्रीमद् विजयदक्षसूरीश्वरजी म. सा.** के पट्टधर-परमपूज्य-आचार्यदेव **श्रीमद्-विजयसुशीलसूरीश्वरजी म. सा.** ।

प्रकाशक::—

आचार्य श्री सुशीलसूरि जैन ज्ञानमन्दिर

शान्तिनगर—सिरोही, राजस्थान (मारवाड़).

-: प्रेरक :-
जैनधर्मदिवाकर-तीर्थप्रभावक-शास्त्रविशारद-श्रीहैमशब्दानुशासनसुधा द्यनेकग्रन्थकारक- परमपूज्य-
आचार्यदेव श्रीमद् विजय सुशीलसूरीश्वरजी म. सा.
के पट्टधर पूज्य
उपाध्यायजी महाराज श्री विनोदविजयजी गणिवर्य.

卐 卐 卐

सम्पादक : -
शासनरत्न-राजस्थानदीपक-मरुधरदेशोद्धारक सुशीलनाममालाद्यनेक ग्रन्थ सर्जक-
परमपूज्य आचार्यदेव
श्रीमद् विजयसुशीलसूरीश्वरजी म. सा. के लघु-
शिष्यरत्न-पूज्य
मुनिराज श्री जिनोत्तम विजयजी महाराज.

श्री वीर सं. २५०६, विक्रम सं. २०३६, नेमि सं. ३१
नकल १००० प्रथमावृत्ति मूल्य पांच रुपये

— सदुपदेशक तथा द्रव्यसहायक —
परमपूज्याचार्यप्रवर **श्रीमद् विजयसुशीलसूरीश्वरजी म० सा०** तथा पूज्यपाद आचार्यदेव **श्रीमद् विजयविकासचन्द्रसूरीश्वरजी म. सा.** के सदुपदेश से इस पुस्तिका के प्रकाशन में द्रव्यसहायक
गुडाबालोतान् श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघ
मु० गुडाबालोतान्, जिला-जालोर, राजस्थान है।

प्रकाशक, प्राप्तिस्थान :-
आचार्य श्रीसुशीलसूरि जैन ज्ञानमन्दिर
शान्तिनगर
सिरोही (राजस्थान)

卐 卐 卐

मुद्रक :--
गौतम आर्ट प्रिन्टर्स
लोहिया बाजार,
ब्यावर (राजस्थान)

महाप्रभाविक–महाचमत्कारिक

श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथजी भगवान

समर्पण....

शान्त सुधारस मृदुमनी, राजस्थान के दीप,
मरुधरदेशोद्धारक सत् कवि, तुम साहित्य के सीप।
कविभूषण हो तीर्थप्रभावक, नयना है निष्काम,
सुशील सूरीश्वर को करूं, वन्दन आठो याम ॥

卐

परमाराध्यपाद, परमोपकारी, भवोदधितारक
प० पू० आचार्य गुरु भगवन्त श्रीमद्
विजयसुशीलसूरीश्वरजी म. सा. के
कर कमलों में सादर समर्पित।

श्रीमच्चरणकमल चञ्चरीक
लघु शिष्य-
जिनोत्तमविजय.

卐 उपोद्‌घात 卐

जैन साहित्य उपदेशात्मक कई ग्रन्थों से भरा पड़ा है। कई कथा ग्रन्थ भी इसके लिये रचे गये हैं। उपदेश का प्रकार और आकार भी अनेकविध है। उसमें कुलक भी एक प्रकार है।

इस कुलक संग्रह में कुल २२ कुलक हैं।

सामान्यतः जिसमें एक क्रियापद का उपयोग हुआ हो ऐसे पांच और उससे अधिक पद्यों के समूह को 'कुलक' कहा जाता है, परन्तु यहां यह व्याख्या घटती नहीं हैं। इस संग्रह में वैराग्यगर्भित उपदेश के पांच से अधिक पद्यों के समूह को-गुच्छ को कुलक नाम दिया गया हो ऐसा मालूम पड़ता है। सभी कुलक प्राकृत भाषा में हैं चार-पांच सिवाय दूसरे कुलकों के कर्त्ता का निर्देश नहीं है। कुलकों की भाषा से कह सकते हैं कि ये सब रचनायें पंदरहवीं शताब्दी के आसपास की हो ऐसा अनुमान है। कम से कम ६ पद्य और ज्यादा से ज्यादा ४७ पद्यों वाला कुलक है। सूची पर से कुलकों का विषय, पद्य संख्या और कर्त्ता के विषय

में ख्याल आ जायगा। सब कुलकों का विषय-सार यहां दिया जाता है।

१. गुणानुवाद कुलक

गुणानुरागी उत्तम पद प्राप्त कर सकता है इसलिये गुणीजनों के प्रति अनुराग रखना और दूसरों के दोषों के प्रति दुर्लक्ष करना। उत्तम पुरुषों की सदा प्रशंसा करना।

२. गुरुप्रदक्षिणा-आचार्यवंदन कुलक

गणधर, युगप्रधान, आचार्य आदि गुरु जिनवचनों का उपदेश करने वाले होने से उनके दर्शन से क्रोधादि कषाय दूर होते ही मानवभव सफल होता है।

३. संविग्न साधु योग्य नियम कुलक

यह कुलक साधुओं को उद्देश कर लिखा गया है। इसमें साधुओं के आचार-नियमों का निरुपण है। ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार के नियमों में कभी प्रमाद न करना चाहिये। साधुओं के नियमों में सदा जागृति रखना चाहिये।

४. पुण्य कुलक

पुण्य से मानवभव, आर्यदेश, उत्तम जाति, उत्तम धर्म आदि की प्राप्ति होती है इसलिये मनुष्य को पुण्य कार्यों में तत्पर रहना चाहिये।

५. दानमहिमा कुलक

अभयदान, अनुकंपादान, सुपात्रदान आदि दान कर्मों से मनुष्य को सौभाग्य, आरोग्य कीर्ति, कान्ति, धन-वैभव आदि प्राप्त होते हैं। दान के कारण ही शालिभद्र ऋद्धि संपन्न हुए थे। दान से ही पुण्य की प्राप्ति होती है।

६. शीलमहिमा कुलक

शील की सुरक्षा करने से पुरुष और स्त्रियों को क्या क्या लाभ हुआ उसका विस्तार से वर्णन है। भ० नेमिनाथ, राजिमती, सुभद्रा, नर्मदासुन्दरी, कलावती, स्थूलभद्र मुनि, वज्रस्वामी, सुदर्शन श्रेष्ठी, सुन्दरी, सुनन्दा, चेल्लणा, मनोरमा, अञ्जना, मृगावती आदि सतीयां और महापुरुषों के उदाहरण देकर उपदेश दिया गया है।

७. तप कुलक

तप और स्वाध्याय से कर्ममल जलकर भस्मसात् हो जाता है। उससे लब्धियां और केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। तपस्या से बाहुबलि को कैवल्य प्राप्त हुआ, गौतमस्वामी को अक्षीण महानसीलब्धि और सनत्कुमार को खेलौषधि लब्धि प्राप्त हुई थी। दृढप्रहारी जैसा घातकी मनुष्य भी तपस्या के प्रभाव से शुद्ध सात्त्विक बन गया था। नंदिषेण मुनि तपस्या से वासुदेव हुए थे। ऐसे कई दृष्टान्त देकर स्वाध्याय की महिमा बताई है।

८. भाव कुलक

भाव के बिना दान, शील, तप में रंग नहीं आ सकता। 'भावना भवनाशिनी' इस हकीकत के दृष्टांत दिये गये हैं। मणि, मंत्र और औषधियां भी भाव से ही फलित होती हैं। प्रसन्नचन्द्र राजर्षि को एक मुहूर्त में ही केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी। मृगावती, इलापुत्र, कुरगडु, मासतुष मुनि, मरुदेवी माता, अर्णिकापुत्र, ५०० तापस, पालक आदि महात्माओं को भाव से ही कैवल्य प्राप्त हुआ था। कपिल मुनि को जातिस्मरण ज्ञान हुआ। आत्मा का शुद्ध भाव ही परम तत्त्व है। भाव और श्रद्धा धर्म साधक है। भाव ही सम्यक्त्व का बीज है।

९. अभव्य कुलक

जिनको कभी मोक्ष प्राप्त न हो सके ऐसे अभव्यजन को भाव का स्पर्श तक नहीं हो सकता। अभव्य जीवों को ३५ वस्तुएँ प्राप्त नहीं होती। ये पेंतीस वस्तुयें यहां गिना दी गई है। वह जिनेश्वर कथित अहिंसा भाव को भी प्राप्त नहीं कर सकता।

१०. पुण्य-पाप कुलक

पुण्य करने से देवगति का और पाप करने से नरकगति का दीर्घकालीन आयुष्य प्राप्त होता है।

११. गौतम कुलक

कषायों से दूर रहने का सर्व साधारण उपदेश दिया है। निष्कषाय जीवन जीने से आदमी निश्चिन्त बनता है और सुखी होता है।

१२. आत्मावबोध कुलक

सद्गुण प्राप्त करने के लिये आत्मा को उद्देश कर उसको जागृत रखने का उपदेश है।

१३. जीवानुशास्ति कुलक

मानव भौतिक सुख प्राप्त करने के लिये लालायित बना रहता है परन्तु वह सुख नश्वर है इसलिये आदमी शुभ परिणाम में वर्ते तो सद्गति प्राप्त कर सकता है। अशुभ परिणामों से दुर्गति मिलती है ऐसा उपदेश है।

१४. इन्द्रियादि विकार निरोध कुलक

एक एक कषाय और एक एक इन्द्रिय के विकार से मानव किस किस योनि में उत्पन्न होता है इस विषय में उपदेश है। मानव को निर्विकार होकर मुक्तिपथ का आश्रय करना चाहिये।

१५. कर्म कुलक

बंधे हुए कर्मों का फल हरेक आदमी को भोगने पड़ते हैं, इसमें किसी का कुछ चलता नहीं है। भ० महावीर

को भी कर्मों के विपाक रुप फल के कारण भयंकर उपसर्गों का सामना करना पड़ा था, तब औरों की क्या बात ? इसलिये कर्मों से छुटने का उपाय करना चाहिये । यह उपदेश है ।

१६, दश श्रावक कुलक

१ आणंद, २ कामदेव, ३ चुलणीपिता, ४ सुरदेव, ५ चुल्लशतक, ६ कुंडकोलिक, ७ सद्दालपुत्र, ८ शतक, ९ लान्तक और १० नन्दिनी प्रिय नामके भ० महावीर के भक्त दश श्रावक थे उनके निवास स्थल, उनकी पत्नियों के नाम और उनके परिग्रह वैभव वगैरह की नोंध दी हुई है । ये सब भ० महावीर की ग्यारह प्रतिमा वहन करने वाले सम्यक्त्वधारी भक्त श्रावक थे ।

'उपासकदशांगसूत्र' में इन सब श्रावकों का वर्णन विस्तार से दिया हुआ है ।

१७. खामणा कुलक

यह जीव आज मनुष्य योनि में आया है, उसने उत्तम कुल और उत्तम धर्म की प्राप्ति की है । धार्मिक समझदारी के कारण अपने पूर्वभवों में भ्रमण करते हुए किसी जीव को दुःख दिया हो उसकी क्षमायाचना रूप वर्णन है । क्षमा-याचना कर्मों के क्षय का कारण बने ऐसी याचना है ।

१८. सारसमुच्चय कुलक

धर्मकृत्य करने से मानव उत्तम कुल, जाति और धर्म की प्राप्ति करता है इसलिये धर्मकृत्य करने में उद्यत रहना चाहिये ऐसा उपदेश दिया गया है।

१९. इरियावहि कुलक,

जीव के ५६३ भेद और विविध दृष्टियों से उनके भी कई प्रकार बताकर उन सब जीवों के प्रति 'मिच्छामि दुक्कडं' रूप क्षमा मांगकर संसार के दुःखों में से मुक्त हो सकते हैं—ऐसा वर्णन है।

२०. वैराग्य कुलक

इस जीव ने सैंकडों भव भ्रमण कर आर्य देश, उत्तम कुल, जाति और धर्म पाया है तो धर्म के फल स्वरुप विरति—वैराग्य प्राप्त कर मोक्षगति प्राप्त करें ऐसा उपदेश दिया है।

२१. वैराग्य रंग कुलक

संसार में सुख नहीं है। स्त्रीओं की चंचलता से भ्रम में पडकर जीवन को बरबाद करना न चाहिये और वैराग्य धारण कर मुक्ति सुख की प्राप्ति करना चाहिये—ऐसा उपदेश दिया है।

२२. प्रमादपरिहार कुलक

इसमें प्रमादपरिहार का दिगदर्शन अच्छा किया है।

मोटे तौर से देखा जाय तो इन कुलकों में आत्म साधना का मार्ग तो बताया गया है तथा आत्मा को उच्चगति मिले वैसा साधना परक मार्ग का सूचन इनमें है। निर्दिष्ट मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति को उच्चगति प्राप्त हो सकती है इसमें संदेह नहीं है। मिले हुए इस मानवभव में धर्म परायण जीवन बनाकर सरल हल्का जीवन प्राप्त करे और आत्मानुभूति करने के लिये उद्यम करता रहे जिससे सुखोपलब्धि और उच्च गति प्राप्त हो सकती है-यह कुलकों का स्थूल सार है।

जरा गहराई से देखें तो-इन कुलकों में राग और द्वेष की अनुभूतिओं का फलादेश बताया गया है। अठारह पापस्थानक भी राग और द्वेष की अनुभूतियों का ही विस्तार है। इसमें से चार कषायों को लेकर विचार करें तो क्रोध, मान, माया और लोभ वे भी राग और द्वेष की ही अनुभूतियां हैं।

जैनाचार्यों ने क्रोध और अभिमान को द्वेषात्मक तथा माया और लोभ को रागात्मक अनुभूति बतायी है। नयों की अपेक्षा से विचार करें तो माया, मान और लोभ रागात्मक भी है और द्वेषात्मक भी परन्तु क्रोध केवल द्वेषात्मक ही है।

इन कषाय और पाप का उद्भव स्थान है मन, वचन, काया की चंचलता। चंचलता कर्म परमाणुओं को आकृष्ट करती है और कषाय उनको टिकाये रखते हैं। कषाय की तीव्रता और मन्दता पर ही उनकी स्थिति का आधार है।

चंचलता और कषायों को रोकने-कम करने और पतले बनाने के लिये साधना का मार्ग निर्दिष्ट है। समभाव में रहें स्थिर रहें-यह साधना मार्ग है।

पहले चंचलता कम करें तब ही साधना का मार्ग खुल सकता है। उसके लिये कायोत्सर्ग बताया है। कायोत्सर्ग से चंचलता क्रमशः कम होती जाती है और पूर्ण रूप से नष्ट भी हो जाती है। मन की चंचलता दूर करने के लिये निर्विचार और निर्विकल्प स्थिति में रहना, वचन की चंचलता हटाने के लिये मौन का अवलंबन करना और काया की चंचलता मिटाने के लिये प्राणायाम-श्वास का नियमन करें। जब वाणी की चंचलता कम होती जायगी तब मन की चंचलता और काया की चंचलता कम होती जायगी और आते हुए कर्म परमाणु रुक जायेंगे।

यह तो एक प्रक्रियात्मक उदाहरण है। परन्तु हरेक प्रकार की वृत्तिओं को वश करने के लिये भिन्न भिन्न प्रक्रिया

का विचार किया गया है। एक सामायिक और प्रतिक्रमण अच्छी तरह से किया जाय तो वृत्तियां पर काबू आ जाता है।

कुलकों में तो स्थूल उपदेश है परन्तु साधना द्वारा अन्तर्यात्रा की जाय तब ऐसी प्रक्रियाओं का ज्ञान सहज बनता है।

हम इन कुलकों के उपदेश को मनमें स्थिर कर आत्मा की अनुभूति करने में तत्पर बने यही शुभ भावना।

पू० आ० श्री विजयसुशीलसूरिजी म० सा० ने इन कुलकों का हिन्दी में अनुवाद करके हिन्दी भाषी जनता का और जैन लोगों पर बड़ा उपकार किया है, यह भुलाया नहीं जा सकता।

भादवा सुद ४ शनिवार
[श्री संवत्सरी महापर्व]
ता० १३-९-८०

अम्बालाल प्रेमचन्द शाह
अहमदाबाद (गुजरात)

卐 प्रकाशकीय निवेदन 卐

'**श्री कुलक संग्रह सरलार्थ**' इस नाम से समलंकृत यह पुस्तिका **आचार्य श्रीसुशीलसूरि जैन ज्ञानमन्दिर** की ओर से प्रकाशित करते हुए हमें अति आनंद हो रहा है।

परम पूज्य शासन-सूरिसम्राट् समुदाय के सुप्रसिद्ध जैन-धर्मदिवाकर--तीर्थप्रभावक--राजस्थानदीपक--मरुधरदेशोद्धारक-शास्त्रविशारद-पूज्यपाद **आचार्यदेव श्रीमद् विजय-सुशीलसूरीश्वरजी म० सा०** का परिवार युक्त विहार और चातुर्मास हमारे राजस्थान [मेवाड़-मारवाड़] में अठारह वर्ष तक संलग्न रहा। पूज्य गुरुदेव जहां जहां पधारे वहां वहां पर धर्मोपदेश और धर्मकार्य द्वारा जैनशासन की अनुपम प्रभावना हुई है।

आपके सदुपदेश से प्राचीन तीर्थ और जिनमन्दिरों का जिर्णोद्धार, नूतन सिद्धचक्र समवसरण पावापुरी आदि मन्दिरों का तथा जिनमूर्त्तिओं का निर्माण, गुरु मन्दिर-ज्ञानमन्दिर जैन उपाश्रय-जैनधार्मिक पाठशाला-आयंबिल भवन एवं धर्मशाला आदि का भी निर्माण हुआ है और हो रहा है। अनेक गांवों में संघ में प्रवर्तती अशान्ति की शान्ति हुई है। आपके उपदेश से और शुभ निश्रा में अनेक तीर्थों के पैदल संघ निकले हैं।

आपकी पावन निश्रा में विविधपूजनों युक्त अनेक धार्मिक महोत्सव, उपधान, उद्यापन (उजमणां), दीक्षाएं,

बड़ी दीक्षाएं, व्रतोच्चारणे, प्रवर्तक-गणी-पंन्यास-उपाध्याय-आचार्यपदार्पणें आदि हुए हैं। तदुपरांत महान् छ अंजन-शलाकाएं एवं पचास उपरांत प्रभु प्रतिष्ठाएं अभूतपूर्व शासन-प्रभावना पूर्वक निर्विघ्न सुसम्पन्न हुई हैं।

ऐसे परम उपकारी पूज्य गुरुदेव आचार्य महाराजश्री ने संस्कृत, हिन्दी एवं गुजराती भाषाओं में छोटे बड़े अनेक ग्रन्थों का सर्जन किया है। प्रस्तुत पूर्वाचार्य विरचित '**कुलक संग्रह**' प्राकृत ग्रन्थ गूर्जरभाषा युक्त अन्य संस्थाओं द्वारा प्रकाशित हुआ देखकर, हिन्दी भाषा में सरलार्थ तैयार कर प्रकाशित करने की पूज्य आचार्य गुरु महाराजश्री को उन्हींके पट्टधर--शिष्यरत्न मधुरभाषी पूज्य **उपाध्याय श्री विनोदविजयजी गणिवर्य महाराजश्रीने** प्रेरणा दी।

पूज्यपाद आचार्य महाराजश्रीने गुडाबालोतान् में श्रीसंघ की साग्रह विनन्ति से चातुर्मास रह कर, साहित्य शास्त्र रचना के अनेक कार्य होते हुए भी उसमें से समय निकाल कर सरल हिन्दी भाषा में लिखकर और '**कुलक संग्रह सरलार्थ**' नाम रखकर इस पुस्तिका को तैयार की है।

इसका सम्पादन कार्य परम पूज्य आचार्य म० सा० के लघुशिष्यरत्न-उत्साही कार्यदक्ष पूज्य **मुनिराजश्री जिनोत्तमविजयजी महाराजश्रीने** किया है।

इस पुस्तिका का उपोद्घात **जैन पंडित श्री अम्बा लाल प्रेमचन्द शाह** ने लिखी है।

इस पुस्तिका को प्रकाशित करने में दोनों पू० आ० म० श्री के उपदेश से गुडाबालोतान् श्री जैन संघ ने द्रव्य सहायता प्रदान की है।

एतदर्थ उपरोक्त दोनों पूज्य आचार्य भगवन्त, पूज्य उपाध्यायजी महाराज एवं पूज्य मुनिराज श्री जिनोत्तम-विजयजी म० का वन्दना पूर्वक, द्रव्यसहायक गुडाबालोतान श्री जैनसंघ का तथा प्रस्तावना के लेखक जैन पंडित अंबालाल प्रेमचन्द शाह का प्रणाम पूर्वक आभार प्रदर्शित करते हैं। मुद्रण कार्य **गौतम आर्ट प्रिन्टर्स**, **ब्यावर** के भी हम आभारी हैं। अन्त में **हिन्दी सरलार्थ युक्त** इस **कुलक संग्रह** का प्रतिदिन प्रातःकाल में या अवकाश के समय में रटण--मनन करने से आत्मभावना जागृत रहती है।

इस पुस्तिका में हिन्दी सरलार्थ युक्त संग्रह की गई काव्य कृतियां सभी धर्मप्रेमी महानुभावों को अति उपयोगी होगा ऐसी आशा रखते हैं।

इस पुस्तिका के मुद्रण कार्य में दृष्टिदोष, मतिदोष या मुद्रणदोष से इसमें स्खलना--भूल रह गई हो तो हम **मिच्छामि दुक्कड** देते हैं और ऐसी स्खलना--भूल तरफ हमारा ध्यान दोराने के लिये इस पुस्तिका के वांचकवर्ग को विनन्ति करते हैं।

शासनसम्राट्–सूरिचक्रचक्रवर्त्ति–तपोगच्छाधिपति-
भारतीय भव्यविभूति-ब्रह्मतेजोमूर्त्ति-महाप्रभावशाली

स्वर्गीय-परमपूज्याचार्य महाराजाधिराज
श्रीमद्विजयनेमीसूरीश्वरजी म० सा०

परमशासनप्रभावक-साहित्यसम्राट् व्याकरणवाचस्पति
शास्त्रविशारद-बालब्रह्मचारी-कविरत्न

स्वर्गीय परमपूज्याचार्यप्रवर

श्रीमद्विजयलावण्यसूरीश्वरजी म. सा.

धर्मप्रभावक-व्याकरणरत्न-शास्त्रविशारद-कविदिवाकर-
देशनादक्ष बालब्रह्मचारी

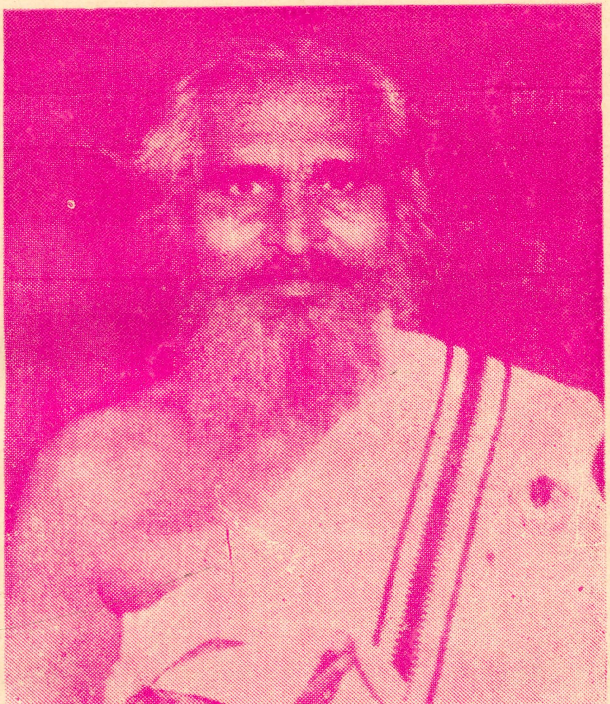

परमपूज्य आचार्यदेव

श्रीमद्विजयदक्षसूरीश्वरजी म० सा०

जैनधर्मदिवाकर-शासनरत्न-तीर्थप्रभावक-राजस्थानदीपक-
मरुधरदेशोद्धारक-शास्त्रविशारद-साहित्यरत्न
कविभूषण-बालब्रह्मचारी

परमपूज्याचार्यदेव
श्रीमद्विजयसुशीलसूरीश्वरजी म. सा.

* विषय-सूची *

विषय	पृष्ठ नंबर
मङ्गलाचरण	१
(१) गुणानुरागकुलकम्	२-१३
(२) गुरु प्रदक्षिणा कुलकम्	१४-२१
(३) संविग्न साधुयोग्यं नियमकुलकम्	२२-४२
(४) पुण्यकुलकम्	४३-४६
(५) दानमहिमागर्भितं दानकुलकम्	४७-५५
(६) शीलमहिमागर्भितं शीलकुलकम्	५६-६४
(७) तपः कुलकम्	६५-७३
(८) भावकुलकम्	७४-८३
(९) अभव्यकुलकम्	८४-८७
(१०) पुण्य-पाप कुलकम्	८८-९५
(११) श्री गौतमकुलकम्	९६-१०५
(१२) श्री आत्मावबोध कुलकम्	१०६-१२६
(१३) जीवानुशास्ति कुलकम्	१२७-१३१
(१४) इन्द्रियादिविकार निरोधकुलकम्	१३२-१३६
(१५) कर्मकुलकम्	१३७-१४३
(१६) दशश्रावककुलकम्	१४४-१४८
(१७) खामणा कुलकम्	१४९-१६१

विषय	पृष्ठ नंबर
(१८) सारसमुच्चय कुलकम्	१६२-१७७
(१९) इरियावहि कुलकम्	१७८-१८४
(२०) वैराग्य कुलकम्	१८५-१९१
(२१) वैराग्य रंग कुलकम्	१९२-२००
(२२) प्रमाद परिहार कुलकम्	२०१-२१२
(२३) कुलकसंग्रहसरलार्थ-प्रशस्ति	२१३
(२४) चातुर्मास का संक्षिप्त वर्णन	

卐 ॐ ह्रीँ अर्हँ नमः 卐

॥ वर्त्तमानशासनाधिपति-श्री महावीरस्वामिने नमः ॥

॥ अनन्तलब्धिनिधान - श्री गौतमस्वामिने नमः ॥

॥ शासनसम्राट् - श्री नेमिसूरीश्वरपरमगुरवे नमः ॥

॥ साहित्यसम्राट् - श्री लावण्यसूरीश्वरप्रगुरवे नमः ॥

कुलक संग्रह सरलार्थ

[हिन्दी भाषा में]

* मङ्गलाचरण *

वन्दन कर विभु वीर को
श्री गौतम भगवन्त को,
स्मरण कर जिनवाणी को
गुरु नेमि-लावण्य-दत्त को।
पूर्व के पुरुषों से कृत
कुलक संग्रह ग्रन्थ का,
'सरलार्थ' को मैं कर रहा हूँ
सारे जीवों के हित का ॥१॥

[१]

॥ गुणानुराग कुलकम् ॥

सयलकल्लाणनिलयं,
नमिऊण तित्थनाहपयकमलं ।
परगुणगहणसरूवं,
भणामि सोहग्गसिरिजणयं ॥१॥

समस्त कल्याण का निवास स्थान है जिनके चरण कमल ऐसे भगवान श्री तीर्थङ्कर प्रभु को प्रणाम करके सौभाग्य दायक तथा संपत्तिदायक परगुणानुराग के स्वरूप का वर्णन करता हूं ॥ १॥

उत्तम गुणाणुराश्रो, निवसइ
हिययंमि जस्स पुरिसस्स ।
आतित्थयरयाश्रो,
न दुल्लहा तस्स ऋद्धिश्रो ॥२॥

जिन पुरुषों के हृदय में उत्तम पुरुषों का अनुराग विद्यमान है उन्हें तीर्थङ्कर पद तक भी कोई सिद्धि दुर्लभ नहीं है । अर्थात् गुणानुरागी राजा, वासुदेव, बलदेव, चक्रवर्ती और तीर्थङ्कर तक हो सकते हैं ॥ २ ॥

ते धन्ना ते पुन्ना,
तेसु पणामो हविज्ज महनिच्चं ।
जेसिं गुणाणुराओ,
अकित्तिमो होई अणवरयं ॥३॥

वे धन्य तथा कृतार्थ जीवन वाले हैं एवं पुण्यशाली हैं उन्हें हमारा सदा नमस्कार हो जिनके हृदय में सदा सच्चा गुणानुराग रहा हुआ है ॥ ३ ॥

किं बहुणा भणिएणं,
किं वा तविएण किं वा दाणेणं ।
इक्कं गुणाणुरायं,
सिक्खह सुक्खाण कुलभवणं ॥४॥

अधिक पढने से क्या तात्पर्य ? या अत्यधिक तप से भी क्या प्रयोजन ? या अतिदान का भी क्या फल ? क्योंकि एक ही गुणानुराग सारे सुखों-फलों को देने वाला सुखों का गृह है तो फिर मात्र गुणानुराग की ही आराधना करो ॥४॥

जइ वि चरसि तव विउलं,
पठसि सुयं करिसि विवहकट्ठाइं ।

न धरसि गुणाणुरायं,
परेसु ता निष्फलं सयलं ॥५॥

जो तुम अत्यधिक तपस्या को करते हुए शास्त्रों का अध्ययन भी करते हो फिर भी कई कष्टों का सामना करते हो तो फिर परगुणानुराग क्यों नहीं ग्रहण करते ? पराये गुणों को देखकर प्रसन्न क्यों नहीं होते । यदि परगुण प्रसन्नता नहीं है तो सब व्यर्थ है ॥५॥

सोऊण गुणुक्करिसं,
अन्नस्स करेसि मच्छरं जइवि ।
ता नूणं संसारे,
पराहवं सहसि सव्वत्थ ॥६॥

दूसरों के गुणों के उत्कर्ष को सुनकर यदि तू इर्षा असूया करता है तो समझ तू संसार में चारों गतियों में पराभव को प्राप्त करेगा ॥ ६ ॥

गुणवंताण नराणं,
ईसा भरतिमिरपूरिओ भणसि ।
जइ कहवि दोसलेसं,
ता भमसि भवे अपारम्मि ॥७॥

यदि तू ईर्षा रूपी घोर अन्धकार के कारण अन्धा होकर गुणवन्त पुरुषों के गुणगान के बदले दोषों को कहना शुरु करेगा या उनकी निन्दा करेगा तो अनेकानेक जन्मों तक अपार संसार में भ्रमण करता रहेगा ॥ ७ ॥

जं अब्भसेई जीवो,
गुणं च दोसं च इत्थ जम्मम्मि ।
तं पर लोए पावई,
अब्भासेणं पुणो तेणं ॥८॥

जीव इस भव में गुण या दोष में से जिसका अभ्यास करता है, उसी अभ्यास के कारण आने वाले भवों में भी उन्हीं गुणों को प्राप्त करता है ॥ ८ ॥

जो जंपइ परदोसे,
गुणसयभरिओ वि मच्छरभरेणं ।
सो विउसाणमसारो,
पलालपुंजव्व पडिभाइ ॥ ९ ॥

जो सैंकड़ों गुणों से युक्त होते हैं यदि वे भी पर ईर्षा से पराया दोष छिद्रान्वेषण करते है तो वे विद्वान् पुरुष भी पराल के गट्ठर (पूंज) की तरह निरर्थक होते हैं ॥९॥

जो परदोषे गिराहइ,
संताऽसंते वि दुट्ठ भावेणं ॥
जो अप्पाणं बंधइ
पावेण निरत्थएणावि ॥ १० ॥

जो दुष्टस्वभाव वश या असद्‌भावना से भूताऽभूत् विद्य या अविद्यमान दोषों को ग्रहण करता है वह मनुष्य स्वयं की आत्मा को निरर्थक पाप से बांधते हैं ॥ १० ॥

तं नियमा मुत्तव्वं,
जत्तो उप्पज्जए कसायग्गी ।
तं वत्थु धारिज्जा,
जेणोवसमो कसायाणं ॥११॥

जिन नियमों से कषाय प्रदिप्त होता है उन्हें अवश्य ही छोड़ देना चाहिये तथा जिन वस्तुओं से कषाय शान्त होता है उन्हें ग्रहण करना चाहिये । अर्थात् पराया दोष नहीं देखना चाहिये क्योंकि इससे कषाय बढते हैं तथा गुणों को छोडना नहीं चाहिये क्योंकि इससे कषाय दबते हैं ॥११॥

जइ इच्छइ गुरुयत्तं,
तिहुयण मज्झम्मि अप्पणो नियमा ।

ता सव्वपयत्तेणं,

परदोसविवज्जणं कुणह ॥१२॥

यदि तू तीन लोक में अपनी बढाई चाहता है तो सर्वतः पराये दोष देखना बन्द कर दे, और पराये दोषों का विवेचन करना भी बन्द कर दे ॥१२॥

चउहा पसंसणिज्जा,

पुरिसा सव्वुत्तमुत्तमा लोए।

उत्तम उत्तम उत्तम,

मज्भिम भावाय सव्वेसिं ॥१३॥

इस संसार में छ प्रकार के जीवों में चार प्रकार के जीव ही प्रशंसा करने योग्य है। एक सर्व सर्वोत्तम दूसरा उत्तमोत्तम तीसरा उत्तम तथा चौथा मध्यम इन चारों प्रकार के मनुष्यों की प्रशंसा करनी चाहिये ॥ १३ ॥

जे अहम अहम अहमा,

गुरुकम्मा धम्मवज्जिया पुरिसा।

ते विय न निंदणिज्जा,

किंतु दया तेसु कायव्वा ॥१४॥

पांचवे प्रकार के जीव अधम या कर्मों का भार बढाने वाले होते हैं, छट्ठे प्रकार के जीव अधमाधम जो धर्म विवर्जित होते हैं उनकी भी निंदा नहीं करनी चाहिये। उन पर दया करनी चाहिये ॥१४॥

उन चार प्रकार के जीवों का स्वरूप–

पच्चंगुब्भडजुव्वण,
वंतीणं सुरहिसार देहाणं।
जुवईणं मज्भगओ,
सव्वुतम रूववंतीणं ॥१५॥
आ जम्म बंभयारी,
मणवय कायेहिं जो धरइ सीलं।
सव्वुत्तमुत्तमो पुण,
सोपुरिसो सव्वनमणिज्जो [युग्मं] ॥१६॥

(१) सर्वाङ्ग सुन्दरी, सुगन्धमय यौवन से लुभाने वाली स्त्रियों के बीच में रहता हुआ भी ब्रह्मचारी की तरह जन्म से ही ब्रह्मचारी रहता है। तथा मनसा, वाचा एवं कर्मणा शीलव्रतधारी रहता है वह सर्वसर्वोत्तम जानना चाहिये। ऐसे पुरुष सर्वतः नमन योग्य हैं ॥ १५–१६ ॥

एवं विह-जुवइगओ,
जो रागी हुज्ज कहवि इगसमयं।
बीय समयम्मि निंदइ,
ते भावे सव्वभावेणं ॥१७॥
जम्मंमि तम्मि न पुणो,
हविज्ज रागो मणंमि जस्स कया।
सो होइ उत्तमुत्तम रूवो,
पुरिसो महासत्तो ॥१८॥

(२) उपर्युक्त सुन्दर स्त्रियों के बीच रहता हुआ संयोगवश क्षण भर कामग्रस्त हो जाता है तथा तत्काल उससे मुक्त हो जाता है तथा इस विकार के लिये मन, वचन काया से अपनी भर्त्सना करता है पुनः इस जन्म में ऐसा राग विकार न होवे वह 'उत्तमोत्तम' कहा जाता है, ऐसे पुरुष महासत्त्वशाली कहे जाते हैं ॥ १७–१८ ॥

पिच्छई जुवइ रूवं,
मणसा चिंतेइ अहम खणमेगं।
जो नायरइ अकज्जं,
पत्थिज्जंतो वि इत्थीहिं ॥१९॥

साहू वा सढ्ढो वा,
सदारसंतोषसायरो हुज्जा ।
सो उत्तमो मणुस्सो,
नायव्वो थोव संसारो ॥२०॥

(३) तीसरे प्रकार के वे लोग होते हैं जो सुन्दरियों के स्वरूप का क्षण भर पान कर मन में ध्यान करते हैं किन्तु अकार्य नहीं करते वे साधु की श्रेणी में गिने गये हैं। अथवा श्रावक भी हो सकते हैं जो स्वदारा संतोषी होते हैं वे अल्प संसारी उत्तम पुरुष कहे गये हैं ॥ १९–२० ॥

पुरिसत्थेसु पवट्टइ,
जो पुरिसो धम्मअत्थपमुहेसु ।
अन्नुन्नमवाबाहं,
मज्झिम रूवो हवइ एसो ॥२१॥

जो मनुष्य (धर्म, अर्थ और काम तीनों पुरुषार्थ परस्पर अबाधित हो) इस प्रकार से प्रवर्तित होते हैं, अर्थात् धर्मार्थ काम रूप से पालन करते हैं वे चौथे प्रकार के 'मध्यम पुरुष' जानने चाहिये ॥ २१ ॥

एएसिं पुरिसाणं,
जइ गुणगहणं करेसि बहुमाणा ।
तो आसन्नसिवसुहो,
होसि तुमं नत्थि संदेहो ॥२२॥

जो इन चारों प्रकार के पुरुषों के गुणों में सम्मान पूर्वक उनके गुणों की प्रशंसा करता है या हे जीव ! यदि तू प्रशंसा करेगा तो निकट भविष्य में मुक्ति सुख को प्राप्त करेगा इसमें तनिक संदेह नहीं ॥ २२ ॥

पासत्थाइसु अहुणा,
संजमसिढिलेसु मुक्कजोगेसु ।
नो गरिहा कायव्वा,
नेव पसंसा सहामज्झे ॥२३॥

पुनः वर्तमान समय में संयम पालन में शिथिल ज्ञानादि गुणसाधक क्रिया से हीन पार्श्वस्था आदि जो साधुओं का वेश रखते हैं उनकी भी निंदा नहीं करनी चाहिये ॥२३॥

काऊण तेसु करुणं,
जइ मन्नइ तो पयासए मग्गं ।

ग्रह रुसइ तो नियमा,
न तेसिं दोसं पयासेइ ॥२४॥

ऐसे लोगों पर करुणा करके यदि वे माने तो उन्हें सत्य का रास्ता बताना चाहिये, यदि वे उस पर भी गुस्से हो जाते हैं तो भी उनकी निंदा तो नहीं करनी चाहिये ॥२४॥

संपइ दूसमसमए,
दीसइ थोवो वि जस्स धम्मगुणो।
बहुमाणो कायव्वो,
तस्स सया धम्मबुद्धीए ॥२५॥

आज के विषम काल में जिसमें थोडा भी धर्मस्वरूप गुण दिखाई दे उसका हमेशा धर्मबुद्धि से सम्मान करना चाहिये ॥ २५ ॥

जउ परगच्छि सगच्छे,
जे संविग्गा बहुस्सुया मुणिणो।
तेसिं गुणाणुरायं,
मा मुंचसु मच्छरप्पहग्रो ॥२६॥

यदि कोई पर गच्छ में हो या स्व गच्छ में हो किन्तु वैराग्यवान् ज्ञानी हो मुनि हो तो उनकी तरफ कभी भी ईर्षा से नहीं देखना चाहिये ॥ २६ ॥

गुणरयणमंडियाणं,
बहुमाणं जो करेइ सुद्धमणो ।
सुलहा अन्नभवंमि य,
तस्स गुणा हुंति नियमेणं ॥२७॥

गुणरूपी रत्नों से मंडित पुरुषों का जो शुद्ध मन से बहुत मान करता है उसे आने वाले भव में वे वे गुण निश्चय ही सुलभ हो जाते हैं ॥ २७ ॥

एयं गुणाणुरायं,
सम्मं जो धरइ धरणिमज्झम्मि ।
सिरि सोमसुंदर पयं,
सो पावइ सव्वनमणिज्जं ॥२८॥

इस प्रकार जो इस पृथ्वी पर जो सम्यग् गुणानुराग को धारण करता है वह सुशोभित चन्द्र जैसा शांतिमय तथा सर्वजन वंदनीय तीर्थङ्कर रूपी पद तथा सिद्धिपद को प्राप्त करता है । **[इसमें कर्त्ता ने 'सोम सुन्दर' अपना नाम अभिव्यक्त किया है]** ॥ २८ ॥

॥ इति श्री गुणानुरागकुलकस्य सरलार्थः समाप्तः ॥

[२]

॥ अथ गुरु प्रदक्षिणा कुलकम् ॥

[सरलार्थ-सहितम् [

-卐-

गोअम सुहम्म जंबु,
पभवो सिज्जंभवाई आयरिया।
अन्नेवि जुगप्पहाणा,
पइं दिट्ठे सुगुरु ते दिट्ठा ॥ १ ॥

हे सद्गुरो! श्री गौतमस्वामी, श्री सुधर्मास्वामी, श्री जंबुस्वामी, श्री प्रभवस्वामी और सिज्जंभव आदि आचार्य भगवंत तथा अन्य भी युगप्रधान महापुरुषों का दर्शन आपके दर्शन करने मात्र से फल लाभ प्राप्त हो जाता है। अर्थात् मेरे जैसे जीव के लिये इस समय में आपका दर्शन उन भगवन्तों के दर्शन के समान है ॥ १ ॥

अज्ज कयत्थो जम्मो, अज्ज कयत्थं च जीवियं मज्झ।
जेण तुह दंसणामय-रसेण सिचाइं नयणाइं ॥२॥

आज मेरा जन्म कृतार्थ हुआ, आज मेरा जीवन सफल हुआ क्योंकि आपके दर्शन स्वरूप अमृत से मेरे नेत्र सिंचित हुए, अर्थात् आपके दर्शन से मैं कृत कृत्य हो गया ॥ ३ ॥

जो देसो तं नगरं,
सो गामो सो अ आसमो धन्नो।
जत्थ पहु ! तुम्ह पाया,
विहरंति सयावि सुपसन्ना ॥ ३ ॥

वह देश, नगर, ग्राम तथा आश्रम धन्य है कि जहां हे प्रभो ! आप सदाय सुप्रसन्न होकर विचरण करते हो अर्थात् विहार कर उस स्थान को धन्य करते हो ॥ ३ ॥

हत्था ते सुकयत्था,
जे किइकम्मं कुणन्ति तुह चलणे।
वाणी बहुगुणखाणी,
सुगुरुगुणा वणिणआ जीए ॥ ४ ॥

मेरे वे हाथ कृतार्थ हुए जो आपके चरणों में द्वादशावर्त वंदन करते हैं, मेरी वाणी इसलिये सफल हुई कि आपका ही गुणानुवाद गाती है। अतः मैं मन, वचन दोनों से सफल हुआ ॥ ४ ॥

अवयरिया सुरधेणू,
संजाया मह गिहे कणयवुट्ठी।

दारिद्दं अज्ज गयं,
दिट्ठे तुह सुगुरु मुहकमले ॥ ५ ॥

आपका मुख कमल दर्शन करने पर मैं ऐसा धन्य हो गया हूं कि जैसे मेरे-आंगन कामधेनु का पदार्पण हुआ हो, तथा सुवर्ण की वृष्टि हुई हो और जैसे मेरा दारिद्र्य ही दूर हो गया हो। तात्पर्य यह है कि सद्गुरु का दर्शन सारे सुखों को देने वाला होता है ॥ ५ ॥

चिंतामणिसारिच्छं,
सम्मत्तं पावियं मए अज्ज ।
संसारो दूरीकओ,
दिट्ठे तुह सुगुरु मुहकमले ॥ ६ ॥

हे सद्गुरु ! आपके मुख कमल के दर्शन करने पर मुझे चिंतामणि रत्न के समान सम्यक्त्व-समकित रत्न प्राप्त हुआ है क्योंकि इस रत्न के प्राप्त होने पर संसार से मुक्ति मिलती है। अर्थात् गुरु दर्शन से मिथ्यात्व का नाश होकर समकित की प्राप्ति होती है ॥ ६ ॥

जा ऋद्धि अमर गणा,
भुंजंता पियतमाइ संजुत्ता ।

सा पुण कित्तियमित्ता,
दिट्ठे तुह सुगुरु मुहकमले ॥ ७ ॥

हे उत्तम गुरो ! आपके मुख कमल के दर्शन के आगे देवताओं की देवाङ्गनाओं सहित जो समृद्धि है उसका कोई महत्व नहीं है। क्योंकि उससे भी आपके दर्शन विशेष महत्वपूर्ण है ॥ ७ ॥

मणवय काएहिं मए,
जं पावं अज्जियं सया भयवं।
तं सयलं अज्जगयं,
दिट्ठे तुह सुगुरु मुहकमले ॥ ८ ॥

हे सद् गुरो ! आपके दर्शन से आज मेरे द्वारा किया गया मन, वचन, काय से जो भी पाप है वह सब नष्ट हो गया है। अर्थात् गुरु दर्शन से अनन्त भवों के पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ८ ॥

दुलहो जिणिंदधम्मो,
दुलहो जीवाण माणुसो जम्मो।
लद्धेवि मणुअजम्मे,
अइदुलहा सुगुरु सामग्गी ॥ ९ ॥

जीवों को मनुष्य जन्म मिलना दुर्लभ है। तथा सर्वज्ञ भाषित धर्म प्राप्त करना दुर्लभ है, कारण कि मनुष्य जन्म मिलना तो फिर भी सम्भव है किन्तु उसमें सद्गुरु की सामग्री मिलनी तो बहुत ही दुर्लभ है। ९ ॥

जत्थ न दीसंति गुरु,
पच्चुसे उट्ठिएहिं सुपसन्ना।
तत्थ कहं जाणिज्जइ,
जिणवयणं अमिअसारिच्छं ॥१०॥

जहां प्रातःकाल उठते ही सुप्रसन्न गुरु के दर्शन नहीं होते वहां जिनवचनों का लाभ कहां? कारण कि गुरु के बिना ज्ञान कहां से मिले ॥१०॥

जह पाउसंमि मोरा,
दिणयर उदयम्मि कमल वणसंडा।
विहसंति तेम तच्चिय?,
तह अम्हे दंसणे तुम्ह ॥११॥

जैसे मेघ को देखकर मयूर प्रमुदित हो जाते हैं तथा सूर्य के उदित होते ही कमल वन विकसित हो जाता है उसी प्रकार आपके दर्शन करने से ही हे गुरुदेव! हम भी प्रसन्न हो जाते है॥ ११ ॥

जह सरइ सुरही वच्छं,
वसंत मासं च कोइला सरइ ।
विंझं सरइ गइंदो,
इह अम्ह मणं तुमं सरइ ॥१२॥

हे गुरुदेव ! जिस प्रकार गौ अपने वत्स को संभालती है, जिस प्रकार कोयल मधुमास की प्रतीक्षा करती है तथा जिस प्रकार गज विंध्याटवी का स्मरण करता है उसी प्रकार आप भी हमारे हृदय में बसे हुए है ॥ १२ ॥

बहुया बहुयां दिवसडां,
जइ मइं सुह गुरु दीठ ।
लोचन बे विकसी रह्यां,
हीअडइं अमिअ पइठ ॥१३॥

बहुत बहुत दिन बितने पर अब आपके दर्शन से हे गुरुदेव ! आज का दिन धन्य है क्योंकि आज आपके दर्शन से मेरे नेत्र विकस्वर हो गये तथा हृदय अमृत से भर गया ॥ १३ ॥

अहो ते निज्जिओ कोहो,
अहो माणो पराजिओ ।

अहो ते निक्खिया माया,
अहो लोहो वसीकिओ ॥१४॥

अहो ! आपने क्रोध को जीत लिया, मान को पराजित किया, माया को दूर किया तथा अहो ! आपने लोभ को सर्वथा वश में कर लिया ॥ १४ ॥

अहो ते अज्जवं साहु,
अहो ते साहु मद्दवं ।
अहो ते उत्तमा खंती,
अहो ते मुत्ति उत्तमा ॥१५॥

अहो ! आपकी सौम्यता धन्य है । आपकी विनम्रता अति धन्य है । आपकी क्षमा उससे भी धन्य है तथा आपकी संतोषवृत्ति तो अति उत्तम है ॥ १५ ॥

इहंसि उत्तमो भंते,
इच्छा होहिसि उत्तमो ।
लोगुत्तमुत्तमं सिद्धिं,
सिद्धिं गच्छसि नीरओ ॥१६॥

हे भगवंत ! आप इस भव में प्रगट हुए अति उत्तम है । जन्मजन्मान्तर में भी उत्तम होंगे । तथा अन्त में भी

कर्म मल त्याग कर मोक्ष नाम का सर्वोत्तम स्थान प्राप्त करने वाले है ॥ १६ ॥

आयरियनमुक्कारो,
जीवं मोएइ भव सहस्साओ ।
भावेण किरमाणो,
होइ पुणो बोहि लाभाए ॥१७॥

आचार्य भगवन्तों को किया हुआ यह नमस्कार जीव को हजारों भवभवान्तर के जन्मों से मुक्ति दिलाता है । कारण कि भावों से युक्त सद्गुरु को किया गया नमन समकित भाव की प्राप्ति करता है ॥ १७ ॥

आयरिय नमुक्कारो,
सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं,
तइयं हवइ मंगलं ॥१८॥

भावाचार्यों को भावपूर्वक किया हुआ नमस्कार सर्व पापों से मुक्त कराता है तथा उसके कारण उत्कर्ष करा कर मंगल भावनाओं की वृद्धि कराता है । सर्व मंगल में तीसरा मंगल है नवकार मन्त्र का तृतीय पद यह महा मंगलकारी है ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीगुरुप्रदक्षिणा कुलकस्य सरलार्थः समाप्तः ॥

[३]

अथ संविग्न साधुयोग्यं नियम् कुलकम्

भुवणिक्क पईवसमं,
वीरं नियगुरुपए अ नमिऊणं
चिरइ अरदिक्खियाणं,
जुग्गे नियमे पवक्खामि ॥१॥

तीनों भुवनों के लिये असाधारण प्रदीप के समान उज्ज्वल श्री वीर प्रभु को और मेरे गुरु के चरण कमलों में नमस्कार करके दीर्घ पर्याय वाले तथा नवदीक्षित साधुओं के निर्वाह योग्य नियम मैं (सोमसुन्दरसूरि) वर्णित कर रहा हूं ॥ १ ॥

निअउअरपूरणफला,
आजीविअ मित्त होइ पव्वज्जा ।
धूलि हडीरायत्तण-सरिसा,
सव्वेसिं हसणिज्जा ॥२॥

योग्य नियमों के पालन रहित प्रव्रज्या (दीक्षा) स्वयं के उदरपूर्ति स्वरूप आजीविका के समान है, अतः नियम रहित

दीक्षा होली के इलाजी के समान मजाक तथा प्रहसन का पात्र बनाती है ॥ २ ॥

तम्हा पंचायारा-
राहणाहेऊं गहिज्ज इअ निअमे ।
लोआइकरुट्ठरूवा,
पव्वज्जा जह भवे सफला ॥३॥

अतः पंचाचार (ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप-वीर्य तथा आचार) के आराधन के लिये लोचादि कष्टस्वरूप नियम ग्रहण करने चाहिये । जिससे कि नियम पूर्वक प्रव्रज्या सफल बने ॥३॥

नाणाराहणाहेउं,
पइदिअहं पंचगाह पढणं मे ।
परिवाडिओ गिराहे
पणगाहा णं च सठ्ठाय ॥४॥

इसमें, ज्ञान आराधन के लिये मेरे रुचित हमेशा पांच मूल गाथाओं को याद करना चाहिये तथा इन पांच गाथाओं को कण्ठाग्र कर नित्य गुरु के पास से इसकी वाचना लेनी चाहिये ॥ ४ ॥

अरणोसिं पढणत्थं,
पणगाहाओ लिहेमि तह निच्चं ।
परिवाडीओ पंच य,
देमि पढंताण पइदियहं ॥५॥

पुनः मैं दूसरों के अध्ययन हेतु पांच गाथा पुस्तक में लिखूँ तथा अध्ययनार्थियों को नियमतः पांच पांच गाथाएँ पढ़ाऊँ ॥ ५ ॥

वासासु पंचसया,
अट्ठ य सिसिरे य तिन्नि गिम्हंमि।
पइदियहं सज्झायं,
करेमि सिद्धंतगुणगणेणं ॥६॥

पुनः सिद्धान्त पाठ करते हुए वर्षा ऋतु में पांच सौ, शिशिर में आठसौ, ग्रीष्म में तीन सौ गाथा के प्रमाण से नित्य सज्झाय ध्यान करूँ ॥ ६ ॥

परमिट्ठिनवपयाणं,
सयमेगं पइदिणं सरामि अहं ।
अह दंसणआयारे,
गहेमि नियमे इमे सम्मं ॥ ७ ॥

पंच परमेष्ठि के नवपदों का एक सौ आठ बार रटन करूं, नित्य नवकारवाली गिनूँ, अब मैं दर्शनाचार के नियमों को स्पष्ट करता हूं ।। ७ ।।

देवे वन्दे निच्चं,
पणसक्कत्थएहिं एक वार महं ।
दो तिन्निय वा वारा,
पइजामं वा जहासत्ति ।। ८ ।।

पांच शक्रस्तव से नित्य एक बार देव वंदन करूँ या दो तीन बार या मध्याह्न चार बार यथाशक्ति अनालस्य देववंदन करूँ, शक्ति संयोग से जघन्य से एक बार उत्कृष्ट से चार बार देववंदन करूँ ।। ८ ।।

अट्ठमी–चउद्दसीसुं,
सव्वाणि वि चेइआइं वंदिज्जा ।
सव्वे वि तहा मुणिणो,
सेसदिणे चेइअं इक्कं ।। ९ ।।

पुनः प्रत्येक अष्टमी चतुर्दशी के दिन समग्र ग्राम-नगर के चैत्य प्रासाद में वंदन करूँ, तथा समग्र मुनिराजों का

वंदन करूँ, तथा शेष दिनों में एक मन्दिर में दर्शन चैत्य-वंदन तो अवश्य ही करूँ ॥ ९ ॥

पइदिणं तिन्निवारा,
　　जिट्ठे साहू नमामि निअमेणं।
वेयावच्चं किंची,
　　गिलाण वुड्ढाइणं कुव्वे ॥१०॥

नित्य वडील साधुओं को अवश्य ही त्रिकाल वंदन करूँ तथा अन्य रुग्ण और वृद्धादि अशक्त मुनिजनों की वेयावच्च यथाशक्ति करूँ ॥ १० ॥

(साध्वी स्वयं के समुदाय में बड़ी साध्वियों का वंदन नित्य करें ।)

अब चारित्राचार के विषय में निम्नलिखित नियमों का वर्णन करते हैं ।

अह चारित्तायारे, नियमग्गहणं करेमि भावेणं।
बहिभूगमणाईसुं, वज्जे वत्ताइं इरियत्थं ॥११॥

१ **इर्यासमिति**—बडीनीति-लघुनीति करना या आहार-पाणी वेरणा करते समय जाते आते जीव-रक्षा के लिये मार्ग में वार्तालाप का त्याग करूँ ॥ ११ ॥

अपमज्जियगमणम्मि,
असंडासपमज्जिउं च उवविसणो।
पाउं छ्यणं च विणा,
उवविसणो पंच नमुक्कारा ॥१२॥

दिन में दृष्टि से या रात्रि में दंडासन से प्रमार्ज्य बिना चले तो अंग पडिलेहण प्रमुख संडासा या आसन प्रमार्ज्य बिना बैठने पर कटासन बिना भूमि पर बैठने पर तत्काल पांच नमस्कार, खमासमण या पांच नवकार मन्त्र का जाप करना चाहिये ॥ १२ ॥

उग्घाडेण मुहेणं,
नो भासे अहव जत्तिया वारा।
भासे तत्तिय मित्ता,
लोगस्स करेमि काउस्सगं ॥१३॥

२. भाषा समिति—मुँहपत्ति रखे बिना नहीं बोलना चाहिये, फिर यदि मुंहपत्ति बिना बोला गया हो तो उतनी ही बार इरियावही पूर्वक 'एक लोगस्स' का काउस्सग्ग करूँ ॥ १३ ॥

असणे तह पडिकमणे,
वयणं वज्जे विसेस कज्जविणा ।
सकीयमुवहिं च तहा,
पडिलेहंतो न बेमि सया ॥१४॥

आहार-पानी ग्रहण करते समय या प्रतिक्रमण करते समय कोई महत्वपूर्ण कार्य के बिना किसी को कुछ भी नहीं कहना, या स्वयं की पडिलेहणा करते समय कभी भी बोलू नहीं, यदि बडों के पडिलेहण समय किसी हेतु से बोलना पड़े तो 'जयणा' ॥१४॥

अन्नजले लब्भंते विहरे,
नो धावणं सकज्जेणं ।
अगलिय जलं न विहरे,
जरवाणीअं विसेसेणं ॥१५॥

३. एषणा समिति—यदि निर्दोष प्रासुक (निर्जीव) जल मिलता हो तो स्वयं के लिये धोवण वाला जल ग्रहण न करूँ, बिना छाना जल न लहूं तथा गृहस्थों का तैयार किया हुआ जरवारी (झरा हुआ) जल तो विशेष करके ग्रहण नहीं करूँ ॥ १५ ॥

सक्किय मुवहिमाई,
पमज्जिउं निक्खिवेमि गिराहेमि ।
जइ न पमज्जेमि तओ,
तत्थेव कहेमि नमुक्कारं ॥१६॥

आदान निक्षेपणा समिति—स्वयं की कोई भी उपधि प्रमुख कोई वस्तु पूंजी-प्रमार्जित कर भूमि पर रखूँ तथा ग्रहण करूँ, तथा यदि इसमें त्रुटि हो जावे तो एक बार नवकार गिनूँ ॥ १६ ॥

जत्थ व तत्थ व उज्झणि,
दंडगउ वहीण अंबिलं कुव्वे ।
सयमेगं सज्झायं,
उस्सग्गे वा गुणेमि अहं ॥१७॥

दण्ड प्रमुख अपनी उपधि जहां तहां (अस्त व्यस्त) रक्खी जावें तो एक आयम्बिल करूँ या खड़े खड़े काउस्सग्ग मुद्रा से एक सौ गाथा का स्वाध्याय करूँ ॥ १७ ॥

मत्तगपरिट्ठवणम्मि अ,
जीव विणासे करेमि निव्वियं ।

अविहीइ विहरिऊणं,
परिठवणे अंबिलं कुव्वे ॥१८॥

पारिठावणिया समिति—लघु नीति, बडीनीति या श्लेष्मादि भाजन उलटते समय किसी जीव का विनाश हुआ हो तो निवी करूँ तथा अविधि से (सदोष) आहार-पानी वहोर कर परठवना पड़े तो एक आयंबिल करूँ ॥ १८ ॥

अणुजाणह जस्सुग्गह,
कहेमि उच्चार मत्तगठाणे ।
तह सन्नाडगलगजोग,
कप्पतिप्पाइ वोसिरे तिगं ॥१९॥

बडी नीति या लघु नीति आदि करने के या परठवन के स्थान पर 'अणुजाणह जस्सुग्गहो' प्रथम कहूं, उसी प्रकार इनमें प्रयुक्त हुए तथा धोवन जल, और लेप एवं डगल प्रमुख परठवने के बाद तीन बार 'वोसिरे' कहूं ॥ १९ ॥

तीन गुप्ति के पालने के लिये ।

रागमये मणवयणे,
इक्किक्कं निव्वियं करेमि अहं ।

काय कुचिट्ठाए पुणो,
उववासं अंबिलं वा वि ॥२०॥

मन वचन से रागमय बोलूँ या विचारूँ तो एक निवी करूँ तथा काया से कुचेष्टा हो तो उन्माद जागे तो एक उपवास या आयंबिल करूँ ॥ २० ॥

पहले व्रत में तथा दूसरे व्रत में—

बिंदिय माईण वहे,
इंदिअ संखा करेमि निव्वियया।
भय कोहाइ वसेणं,
अलीयवयणंमि अंबिलयं ॥२१॥

दो इन्द्रिय प्रमुख त्रस जीवों की विराधना हिंसा मेरे प्रमादाचार से हुई हो तो हत जीव के इन्द्रियों के अनुसार निवीआं करूँ। दूसरे व्रत में भय क्रोध लोभ तथा हास्यादिक के वश असत्य बोलूँ तो आयंबिल करूँ ॥ २१ ॥

तीसरे व्रत में—

पढमालियाइ तु गहे,
घयाइवत्थूण गुरु अदिट्ठाणं।
दंडगतप्पणगाई,
अदिन्न गहणे य अंबिलयं ॥२२॥

नवकारसी आदि में आये हुए घृतादिक पदार्थ को गुरु महाराज को दिखाये बिना नहीं ग्रहण करूँ, तथा अन्य साधुओं का दंडा तरपणी आदि बिना आज्ञा उपयोग में लूँ तो आयंबिल करूँ ॥ २२ ॥

चौथे व्रत में—तथा पांचवे व्रत में।

एगित्थीहिं वत्तं,
न करे परिवाडिदाणमवि तासि।
इगवरिसा रिह मुवहिं,
ठवे अहिगं न ठावेवि ॥२३॥

एकान्त में स्त्रियों व साध्वियों के साथ वार्तालाप न करूँ, तथा उन्हें स्वतन्त्ररूप से पढाऊं नहीं। एक वर्ष जितनी ही उपधि रखूं इससे अधिक नहीं ॥ २३ ॥

छट्ठे व्रत मे—

पत्तग टुप्परगाइ,
पन्नरस उवरिं न चेव ठावेवि।
आहाराण चउराहं,
रोगे वि अ सनिहि न करे ॥२४॥

पात्रादि कुल पन्द्रह से अधिक न रखूं। अशन, पान खादिम तथा स्वादिम चारों प्रकार के आहार का लेश मात्र भी संनिधि न करूं रोगादि में भी नहीं, नित्य आवश्यकतानुसार ही लाऊं, संग्रह नहीं करूं ॥ २४ ॥

महारोगे वि अ कादं,
न करेमि निसाइ पाणीयं न पिबे।
सायं दो घडीयाणं,
मज्झं नीरं न पिबेमि ॥२५॥

बड़े रोगों में भी क्वाथ या उकाला करा कर वापरूँ नहीं, रात्रि में जलपान न करूँ। सूर्यास्त से पूर्व दो घड़ी में पानी न पीऊँ, उसके पश्चात् अशनादिक आहारिक क्रियायें तो करने की बात ही नहीं ॥ २५ ॥

अहवत्थमिए सूरे,
काले नीरं न करेमि सयकाले।
अणाहारो सह संनिहि,-
मवि नो ठावेमि वसहीए ॥२६॥

सूर्यास्त पूर्व ही आहार पानी से निवृत्त हो जाऊँ, तथा आहार सम्बन्धी पच्चक्खाण कर लूँ तथा अणाहारी औषध

का संग्रह भी उपाश्रय में न तो रखूँ तथा न इसकी आज्ञा ही दूँ ॥ २६ ॥

तपाचार के विषय में-

तवआयारे गिराहे,
अह नियम कइवए ससत्तीए।
ओगाहियं न कप्पइ,
छट्ठाइतवं विणा जोगं ॥२७॥

कितने ही नियम यथाशक्ति ग्रहण करूँ, उसमें एक साथ दो उपवास न किये हो या अधिक तप न किया हो, या योगवहन न किया गया हो तो मुझे अवगाहिम (पकवान्न-विगइ) भिक्षा लेना कल्पित नहीं है ॥ २७ ॥

निव्विय तिगं च अंबिल-
दुगं च विणु नो करेमि विगयमहं।
विगइदिणे खंडाइ,
गकार नियमो अ जावजीवं ॥२८॥

लगातार तीन निविओं के बिना या दो आयंबिल के बिना दूध, दही, घी आदि लूँ नहीं। तथा विगइ वापरने के समय दूधादि स्वाद हेतु शर्करा का प्रयोग न करूँ। तथा इस नियम को जीवन भर पालूँ ॥ २८ ॥

निव्वअयाइं न गिरहे,
निव्विय तिगमज्झि विगइ दिवसे अ।
विगइं नो गिरहेमि अ,
दुन्नि दिणे कारणं मुत्तुं ॥२१॥

तीन निविओं लागोलाग होवे तब तक तथा विगइ ग्रहण के दिन भी पक्कान्नादि नहीं ग्रहण करूँ। तथा पुष्ट कारण के बिना दो दिन तक प्रयोग न करूँ ॥ २९ ॥

अट्ठमी चउद्दसीसुं,
करे अहं निव्वीयाइं तिन्ने व।
अंबिल दुगं च कुव्वे,
उववासं वा जहा सत्ति ॥३०॥

प्रति अष्टमी चतुर्दशी उपवास करूँ, शक्याभावे दो आयंबिल या तीन निविओं आदि करूँ ॥ ३० ॥

दव्वखित्ताइगया,
दिणे दिणे अभिग्गहा गहे अव्वा।
जीयम्मि जओ भणियं,
पच्छित्तमभिग्गहाभावे ॥३१॥

नित्य द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से अभिग्रह धारण करने चाहिये, कारण इसके पालन बिना प्रायश्चित लगता है। ऐसा श्री यतिजित कल्प में कहा गया है ॥ ३१ ॥

वीर्याचार—

वीरियायारनियमे,
गिगहे केइ अवि जहासत्ति ।
दिण पण गाहाइणं,
अत्थं गिगहे म(गो)गुण सया ॥३२॥

वीर्याचार सम्बन्धी कितने ही नियमों का मैं यथाशक्ति पालन करता हूं, किनहीं ? नित्य संपूर्ण पांच गाथाओं का अर्थ ग्रहण करके रटन-स्वाध्याय करूँ ॥ ३२ ॥

पणवारं दिणमज्झे,
पमायथंताण देमि हियसिक्खं ।
एगं परिट्ठवेमि अ,
मत्तयं सव्वसाहूणं ॥३३॥

वडीलता के नाते दिन में संयम मार्ग में प्रमाद करने वाले को मैं पांच वार हित शिक्षा दूँ तथा लघुता के नाते में सब वडील साधुओं का एक एक मात्रक परठवुं ॥३३॥

चउवीसं वीसं वा,
लोगस्स करेमि काउसग्गम्मि।
कम्मखयट्ठा पइदिणं,
सज्झायं वा वितम्मित्तं ॥३४॥

नित्य कर्मक्षय हेतु चौबीस या बीस लोगस्स का काउस्सग्ग करूँ, या काउस्सग्ग में रहने वाली स्थिरता से सज्झाय ध्यान करूँ ॥ ३४ ॥

निद्दाइपमाएणं,
मंडलिभंगे करेमि अंबिलयं।
नियमा करेमि एगं,
विस्सामयणं च साहूणं ॥३५॥

निद्रादिक के प्रमाद से मंडली का भंग हो जावें तो, या प्रतिक्रमणादि क्रिया में पृथक् पड़ जाऊँ तो एक आयंबिल करुं, और साधुओं की एक बार विश्रामणा-वैयावच्च निश्चय ही करूँ ॥ ३५ ॥

सेह गिलाणाईणं,
विणा वि संघाडयाइ संबंधं।
पडिलेहणमल्लगपरि,
ठवणाइ कुव्वे जहा सत्ति ॥३६॥

संघाडादि का कोई सम्बन्ध न होने पर भी लघु-शिष्य, ग्लान साधु, प्रमुख का पडिलेहण तथा परठवव क्रिया यथाशक्ति करता रहूँ ॥ ३६ ॥

वसही पवेसि निगम्मि,
　　निसिहि आवस्सियाण विस्सरणे ।
पायाऽपमज्जणे वि य,
　　तत्थेव कहेमि नमुक्कारं　　॥३७॥

वसती-उपाश्रय में प्रवेश करते समय 'निसीहि' तथा बाहर आते समय 'आवस्सहि' कहना भूल जाऊँ, या ग्रामादि में प्रवेश—निर्गम समय यही भूल जाऊँ, तो जहां याद आवे वहीं नवकार मन्त्र जपना न भूलूँ ॥ ३७ ॥

भयवं पसाउ करिउं,
　　इच्छाइ अभासणम्मि वुड्ढेसु ।
इच्छा काराऽकरणे
　　लहूसु साहूसु कज्जेसु　　॥३८॥

कार्य प्रसंग में वृद्ध साधुओं को विनंती करते समय हे भगवन् ! 'पसाउ करिउं' तथा लघु साधुओं को 'इच्छाकार' अर्थात् उनकी इच्छानुसार यह कहना भूल जाऊँ, तब तब

'मिच्छामि दुक्कडं' ऐसा कहना भूल जाऊँ, तो ज्योंही याद आवे मैं एकवार नवकार मन्त्र का जाप करूँ ॥३८॥

सव्वत्थवि खलिएसु
मिच्छा कारस्स अकरणे तह य ।
सयमन्नाउ वि सरिए,
कहियव्वो पंचनमुक्कारो ॥३९॥

जहां भी उपर्युक्त क्रिया में स्खलना हो तो मैं किसी के भी हितैषी के कहने पर मैं नवकार मन्त्रका कम से कम एक बार जाप करूँ ॥३९॥

वुड्डस्स विणापुच्छं,
विसेसवत्थु न देमि गिण्हेवा ।
अन्नं, पि अ महकज्जं,
वुड्ढं पुच्छिय करेमि सया ॥४०॥

वृद्धों की आज्ञा विना कोई विशेष या श्रेय वस्तु वस्त्रादि अन्य के पास से नहीं लूं । दूं भी नहीं, नित्य किसी भी छोटे बड़े कार्य हेतु वृद्धों की आज्ञा लूं ॥४०॥

दुब्बल संघयणाण वि,
ए ए नियमा सुहावहा पायं ।

किंचि वि वेरग्गेणं,
गिहिवासो छड्डिओ जेहिं ॥४१॥

शरीर के सब बंधनों में शिथिलता है या यदि दुर्बल भी है ऐसे दुर्बल संघयण वाले जिन्होंने कुछ वैराग्य के कारण गृहस्थाश्रम छोडा है उन्हें भी ये नियम शुभ फल देने वाले है ॥४१॥

संपइ काले वि इमं,
काउं सक्के करेइ नो नियमो ।
सो साहुत्त गिहित्तण--
उभयभट्ठो मुणेयव्वो ॥४२॥

संप्रति काल में भी सुख पालने योग्य इन नियमों को सम्मान पूर्वक पाले नहीं तो उन्हें साधुत्व तथा गृहस्थपन से भ्रष्ट जानना चाहिये ॥४२॥

जस्स हिययंमि भावो,
थोवो वि न होइ नियम गहणंमि ।
तस्स कहणं निरत्थय,
मसिरावणि कूवखणणं व ॥४३॥

जिनके हृदय में लेश मात्र भी इन नियमों को ग्रहण करने का भाव न हो, उन्हें इसका उपदेश देना मरुभूमि

में कूप खोदने जैसा है, या जल हीन भूमि में जल के लिये प्रयत्न करने के समान व्यर्थ है ॥ ४३ ॥

संघयण काल बलदूसमा-
रयालंबणाइं घित्तूणं ।
सव्वं चिय निग्रमधुरं,
निरुज्जमाग्रो पमुच्चंति ॥४४॥

वर्तमान समय में संघयण काल, बल, दुःषम आदि निर्बल है इस प्रकार के पुरुषार्थहीन वाक्यों का अवलम्बन कर पुरुषार्थ हीन पुरुष संयम तथा नियमों की धुरि को छोड़ देते हैं । पुरुषार्थी नहीं ॥ ४४ ॥

वुच्छिन्नो जिणकप्पो,
पडिमाकप्पो ग्र संपइ नत्थि ।
सुद्धो ग्र थेरकप्पो,
संघयणाईण हाणीए ॥४५॥
तहवि जइए ग्र नियमा-
राहण विहिए जइज्ज चरणम्मि ।
सम्ममुवउत्तचित्तो,
तो नियमा राहगो होइ ॥४६॥

संप्रति काल में जिन कल्प व्युच्छिन्न हुआ सा है फिर प्रतिमा कल्प भी प्रवर्तित नहीं है। संघयणादिक के नाश से शुद्ध स्थविर कल्प भी पाला नहीं जाता, फिर भी जो मुमुक्षु जीव इन नियमों की आराधना पूर्वक सम्यग् उपयुक्त चित्त से चारित्र पालन में प्रयत्न करे तो निश्चय ही जिनाज्ञा का आराधक हो सकता है ॥४५--४६॥

ए ए सव्वे नियमा-
जे सम्मं पालयंति वेरग्गा।
तेसिं दिक्खा गहिआ,
सहला सिवसुह फलं देइ ॥४७॥

इन श्रेष्ठ नियमों को जो आत्मा से पाले, वैराग्य से वर्ते, आराधना करें तो उसकी ग्रहण की गई दीक्षा सफल होती है तथा शिव सुख के फल की प्राप्ति होती है ॥४७॥

॥ इति श्री संविज्ञ साधुयोग्यं नियम
कुलकस्य सरलार्थः समाप्तः ॥

[४]

॥ अथ पुण्य कुलकम् ॥

—卐—

संपुन्न इंदियत्तं,
मणुसत्तं विपुल आरियं खित्तं।
जाइ कुल जिणधम्मो,
लब्भंति पभूयपुराणेहिं ॥१॥

सम्पूर्ण पंचेन्द्रिय युक्त मनुष्यत्व, धर्म सामग्री युक्त आर्य क्षेत्र में अवतार, उत्तम जाति, उत्तम कुल और वीतराग भाषित जैनधर्म ये सब प्रभूत पुण्य से ही प्राप्त होते हैं ॥१॥

जिण चलण कमल सेवा,
सुगुरुपयपज्जुवासणं चेव।
सज्झाय वायवडत्तं,
लब्भंति पभूयपुराणेहिं ॥ २ ॥

जिन–अरिहन्त के चरणकमल की सेवा-भक्ति सद्गुरुचरण की पर्युपासना तथा पांचों प्रकार के स्वाध्याय में अप्रमाद ये भी प्रभूत पुण्य से ही प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

सुद्धो बोहो सुगुरुहिं,
संगमो उवसमो दयालुत्तं।
दक्खिण्णं करणजओ,
लब्भंति पभूयपुराणेहिं ॥ ३ ॥

शुद्ध बोध (वीतराग वचन बोध), सुगुरु समागम, उपशम भाव, दयालुता, दाक्षिण्य तथा इन्द्रियों पर विजय ये उत्तरोत्तर बहुत पुण्य से ही प्राप्त हो सकते हैं ॥ ४ ॥

सम्मत्ते निच्चलत्तं,
वयाण परिपालणं अमाइत्तं।
पढणं गुणणं विणओ,
लब्भंति पभूयपुराणेहिं ॥ ४ ॥

सम्यक्त्व में निश्चलता, व्रतों का निरतिचार पालन करना, निर्मायित्व, पढणा गणना तथा विनय ये सब बहुत पुण्य से ही प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

उस्सग्गे अववाये,
निच्छय ववहारयम्मि निउणत्तं।
मणवयणकायसुद्धी,
लब्भंति पभूयपुराणेहिं ॥५॥

उत्सर्ग और अपवाद तथा निश्चय और व्यवहार में निपुणपणा तथा मन वचन काया से शुद्धि रखना ये सब भी बहुत पुण्य प्रभाव से प्राप्त होता है ।। ५ ।।

अवियारं तारुरायं, जिणाणं रात्रो परोवयारत्तं ।
निक्कं पया य झाणो, लब्भंति पभूयपुराणेहिं ।।६।।

निर्विकार युक्त यौवन, जिनेश्वर का राग, परोपकार भावना, तथा ध्यान में निश्चलता ये भी बहुत पुण्यों के कारण ही उपलब्ध होते हैं ।। ६ ।।

परनिंदा परिहारो,
अप्पसंसा अत्तणो गुणाणं च ।
संवेश्रो निव्वेश्रो,
लब्भंति पभूयपुराणेहिं ।।७।।

परनिंदा तथा स्व प्रशंसा का त्याग तथा मोक्षाभिलाषा और निर्वेद-भाव वैराग्य ये भी बहुत पुण्यों से ही प्राप्त होते हैं ।। ७ ।।

निम्मल सीलब्भासो, दाणुल्लासो विवेग संवासो ।
चउगइदुहसंतासो, लब्भंति पभूयपुराणेहिं ।।८।।

निर्मल शुद्ध शील का अभ्यास, सुपात्र में दान देने का उल्लास, हिताहित में हेय उपादेय का विवेक तथा चार गतियों के दुःखों का त्रास होना ये भी अति पुण्य प्रभाव से ही प्राप्त होता है ॥८॥

दुक्कडगरिहा सुक्कडा-णुमोयणं पायच्छित्ततवचरणं ।
सुहझाणं नवकारो, लब्भंति पभूयपुण्णेहिं ॥९॥

कृत पापों की आलोचना-निंदा, गुरु समक्ष गर्हा करना, सुकृत की अनुमोदना, कृत पापों के छेदन का उपाय, गुरु द्वारा निर्दिष्ट तप का आचरण शुभ ध्यान और नवकार मन्त्र का जाप ये भी अति पुण्योदय से ही प्राप्त होता है ॥९॥

इयगुणमणि भंडारो,
सामग्गी पाविऊण जेहिं कओ ।
विच्छिन्नमोहपासा,
लहंति ते सासयं सुक्खं ॥१०॥

यह मनुष्य जन्म आदि सारी पुण्य सामग्री प्राप्त कर जिन्होंने क्षमा ज्ञानादि गुणों का रत्नभंडार भरा है वे मोह-जित धन्य प्राणी शाश्वत् सुख को प्राप्त करते हैं ॥१०॥

॥ इति श्री पुण्य कुलकस्य सरलार्थ समाप्तः ॥

[५]

॥ दान महिमा गर्भितं दान कुलकम् ॥

卐

परिहरिअ रज्जसारो,
उप्पाडिअ संजमिक्क गुरुभारो।
खंधाओ देवदूसं,
विअरंतो जयउ वीर जिणो ॥ १ ॥

समस्त राज्य समृद्धि का त्याग किया, संयम का गुरु-भार वहन किया, तथा दीक्षा के समय इन्द्र प्रदत्त देवदुष्य अपने स्कंध से आते हुए विप्र को दान में दे दिया, ऐसे श्री वीर प्रभु जयवन्त वर्त्तें ॥ १ ॥

धमत्थ कामभेया,
तिविहं दाणं जयम्मि विक्खायं।
तहवि अ जिणिंद मुणिणो,
धम्मिय दाणं पसंसंति ॥ २ ॥

धर्मदान, अर्थदान और कामदान ये तीन प्रकार के दान प्रसिद्ध हैं फिर भी जिनेश्वर की आज्ञा पालने वाले मुनिजन धर्मदान को ही विशेष प्रेम तथा प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥

दाणं सोहग्गकरं,
दाणं आरुग्ग कारण परमं ।
दाणं भोग निहाणं,
दाणं ठाणं गुणगणाणं ॥ ३ ॥

दान सौभाग्य को देने वाला है, दान परम आरोग्य का कारण है, दान पुण्य का निधान अर्थात् भोग फल देने वाला है, तथा दान अनेक गुण समूहों का स्थान है ॥३॥

दाणेण फुरइ कित्ती,
दाणेण य होइ निम्मला कंती ।
दाणावज्जिय हिअओ,
वेरी विहु पाणियं वहइ ॥ ४ ॥

दान के कारण निर्मल कीर्ति बढती है । दान से निर्मल कान्ति बढती है, तथा दान के कारण दुश्मन भी अधीन होकर दातार के गृह पाणी भरता है ॥ ४ ॥

धणसत्थवाह जम्मे,
जं घयदाणं कयं सुसाहूणं ।
तक्कारणमुसभजिणो,
तेलुक्कपियामहो जाओ ॥ ५ ॥

धन सार्थवाह के भव में घी का दान उत्तम साधुओं को दिया गया था, इस कारण ऋषभदेव भगवान तीनों लोकों के पितामह-दादा हुए ॥५॥

करुणाई दिन्नदाणो,
जम्मंतरगहिअ पुराण किरिआणो।
तित्थयरचक्करिद्धि,
संपत्तो संतिनाहो वि ॥६॥

पीछे के दशमे भव में करुणा के कारण कपोत को अभयदान देने वाले तथा जन्म-जन्मान्तर में भी यही क्रिया अक्षुण्ण रखी ऐसे शान्तिनाथ भगवान् ने भी आखिरी भव में तीर्थङ्कर और चक्रवर्ती की ऋद्धि को प्राप्त किया ॥६॥

पंचसयसाहुभोयण
दाणावज्जिअ सुपुराण पब्भारो।
अच्छरिय चरिअभरिओ,
भरहो भरहाविओ जाओ ॥७॥

पांच सौ साधुओं को भोजन लाकर के प्रदान करना तथा उसका पुण्य उपार्जन करना आश्चर्यजनक चरित्र का प्रतीक है। ऐसा भरत भरतक्षेत्र का नायक-चक्रवर्ती राजा हुआ था ॥७॥

मूलं विणा वि दाउं,
गिलाणपडिअरणजोगवत्थूणि ।
सिद्धो अ रयण कंबल
चंदण वणिओ वि तम्मि भवे ॥८॥

रुग्ण मुनियों को औषधि में उपयोगी वस्तुएं मात्र देने से ही रत्नकंबल और बावना चंदन का व्यापारी उसी भव में सिद्धि पद को प्राप्त हुआ था ॥८॥

दाऊण खीरदाणं,
तवेण सुसिअंगसाहुणो धणिअं ।
जणजणिअचमक्कारो,
संजाओ सालिभद्दो वि ॥९॥

तपश्चर्या से अत्यन्त सुशोभित एवं शोषित देहयष्टि है जिसकी ऐसे मुनिराज को क्षीर का दान करने से शालिभद्र ने भी सभी के लिये चमत्कार उत्पन्न करे ऐसी ऋद्धि को पाया था ॥ ९ ॥

जम्मंतरदाणाओ,
उल्लसिआऽपुव्वकुसलझाणाओ ।

कयवन्नो कयपुन्नो

भोगाणं भायणं जाओ ॥१०॥

पूर्व जन्म में दिये हुए दान से प्रगटित अपूर्व शुभ ध्यान के प्रभाव से अति पुण्यवंत कयवन्न श्रेष्ठि विशाल सुखभोग का भागी बना था ॥१०॥

घयपूसवत्थपूसा,

महरिसिणो दोसलेसपरिहीणा।

लद्धीइ सयल गच्छो-

वग्गहगा सुग्गइं पत्ता ॥११॥

घृतपुष्प तथा वस्त्रपुष्प नाम के दो महामुनि स्वलब्धि के कारण समग्र गच्छ की निरतिचार भक्ति करते हुऐ मोक्ष को प्राप्त हुए थे ॥११॥

जीवंत सामि पडिमाइ,

सासणं विअरिऊण भत्तीए।

पव्वइऊण सिद्धो,

उदाइणो चरमरायरिसी ॥१२॥

जीवन्त (महावीर) स्वामी की प्रतिमा की भक्ति के कारण राज्य का भाग देकर दीक्षित होने वाले उदायी नाम के अन्तिम राजर्षि मोक्ष गति को प्राप्त हुए थे ॥१२॥

जिणहरमंडिअवसुहा,
दाउं अणुकम्पभत्तिदाणाइं ।
तित्थप्पभावगरेहिं,
संपत्तो संपई राया ॥१३॥

जिसने सारी पृथ्वी को जिन चैत्यों से सुशोभित कर लिया ऐसा सम्प्रति राजा अनुकम्पादान तथा सुपात्रदान के कारण शासन प्रभावकों में अग्रगण्य पद पाया था ॥१३॥

दाउं सद्धासुद्धे,
सुद्धेकुम्मासए महामुणिणो ।
सिरिमूल देवकुमारो,
रज्जसिरिं पाविओ गुरुइं ॥१४॥

श्रद्धा से शुद्ध निर्दोष उड़द के बाकुलों का दान महामुनि को देने से जितशत्रु राजा के पुत्र श्री मूलदेवकुमार विशाल राज्यलक्ष्मी के स्वामी बने ॥ १४ ॥

अइदाणमुहरकविअण-
विरइअसयसंखकव्ववित्थरिअं ।
विक्कमणरिंद चरिअं,
अज्जवि लोए परिप्फुरइ ॥१५॥

अतिदान प्राप्ति से प्रसन्न मन कवि तथा पण्डित सहस्रों के काव्यों द्वारा रचित श्री विक्रमादित्य चरित्र आज भी लोक में प्रसिद्धि को प्राप्त है ॥ १५ ॥

तियलोयबंधवेहिं,
तब्भवचरिमेहिं जिणवरिंदेहिं ।
कय किच्चेहि वि दिन्नं,
संवच्छरियं महादाणं ॥१६॥

तीनों लोकों के बन्धु ऐसे जिनेश्वर–तीर्थंकरों जो उसी भव में निश्चय ही मोक्ष जाने के कारण कृत कृत्य हैं । उन्होंने भी सांवत्सरिक दान दिया था ॥ १६ ॥

सिरिसेयंसकुमारो,
निस्सेयससामिओ कह न होइ ।
फासुअदाणपवाहो,
पयासिओ जेण भरहम्मि ॥१७॥

जिसने निर्दोष पदार्थों के दान धर्म का प्रवाह इस अवसर्पिणी में भरतक्षेत्र में चलाया वे श्री श्रेयांसकुमार मोक्ष के स्वामी क्यों न हो ? अर्थात् निश्चय ही वे तो मोक्ष के स्वामी है ही ॥ १७ ॥

कहं सा न पसंसिज्जइ,
चंदणबाला जिणिंददाणेणं ।
छम्मासिअ तव तविओ,
निव्वविओ जीए वीर जिणो ॥१८॥

छमासिक तप करने वाले घोर तपस्वी श्री वीर प्रभु को जिसने उड़दों के बांकुल दान कर संतुष्ट किया था वह चन्दनबाला प्रशंसा को क्यों नहीं प्राप्त करें ? ॥ १८ ॥

पढमाइं पारणाइं,
अकरिंसु करंति तह करिस्संति ।
अरिहंता भगवंता,
जस्स घरे तेसि धुवसिद्धि ॥१९॥

अरिहंत भगवन्तों ने जिनके घर प्रथम पारणे किये, करते हैं और करेंगे उन्हें आत्म सिद्धि अवश्य होगी ॥१९॥

जिणभवणबिंबपुत्थय,
संघसरूवेसु सत्तखित्तेसु ।

वत्तिग्रं धणं पि जायइ,
सिव फलयमहो श्रणंतगुणं ॥२०॥

आश्चर्य है कि जिनबिंब, आगम, पुस्तकें और साधु साध्वी, श्रावक श्राविकाओं रूप चतुर्विध संघ इन सातों क्षेत्रों में बोया हुआ धन अनन्त गुण फल प्रदान करने वाला होता है ॥ २० ॥

॥ इति श्री दानमहिमा गर्भित-दानकुलकस्य सरलार्थः समाप्तः ॥

[६]

॥ शील महिमा गर्भितं शीलकुलकम् ॥

卐

सोहग्ग महानिहिणो,
पाए पणमामि नेमिजिणवइणो ।
बालेण भुयबलेणं,
जणद्दणो जेण निज्जिणिओ ॥ १ ॥

जो बाल्यावस्था में ही अपने भुज बल से श्रीकृष्ण को जीत लिया करते थे वे सौभाग्य समुद्र श्री नेमिनाथ के चरण कमलों की मैं वंदना करता हूं ॥ १ ॥

सीलं उत्तमवित्तं,
सीलं जीवाण मंगल परमं ।
सीलं दोहग्गहरं,
सीलं सुक्खाण कुलभवणं ॥ २ ॥

शील प्राणियों का उत्तम धन है, शील जीवों के लिये परम मंगल स्वरूप है, शील दुःख दारिद्र्य को हरने वाला होता है तथा शील सकल सुखों का धाम है ॥ २ ॥

सीलं धम्मनिहाणं,
सीलं पावाण खंडणं भणियं ।
सीलं जंतूण जए,
अकित्तिमं मंडणं परमं ॥ ३ ॥

शील धर्म का निधान है, शील सारे पापों को नष्ट करने वाला है तथा शील संसार के समस्त प्राणियों का शृङ्गार है । शीलं सर्वत्र वैधनम् ॥ ३ ॥

नरयदुवार निरुंभण–
कवाडसंपुडसहोअरच्छायं ।
सुरलोअ धवल मंदिर-
आरुहणे पवर निस्सेणिं ॥ ४ ॥

शील यह नर्क के द्वार बन्द करने के लिये दो किवाड है तथा देवलोक में आरूढ होने के लिये उत्तम सीडी के समान है ॥ ४ ॥

सिरिउग्गसेणधूआ,
राइमई लहइ सील वईरेहं ।
गिरिविवरगओ जीए,
रहनेमी ठविओ मग्गे ॥ ५ ॥

श्री उग्रसेन राजा की पुत्री राजीमती ने शीलवंती स्त्रियों में श्रेष्ठ पद पाया था क्योंकि कामातुर "रहनेमि" गुफा में मोहित होकर शील भंग करना चाहता था उसे भी संयम मार्ग में वापिस स्थिर किये ॥ ५ ॥

पज्जलिओ विहु जलणो,
सीलप्पभावेण पाणिअं हवई ।
सा जयउ जए सीआ,
जीसे पयडा जस पडाया ॥ ६ ॥

जिसके शीलरूप प्रज्वलित प्रभाव से अग्नि भी जल के समान शीतल हो गई, ऐसी माता सीता संसार में युगयुगों तक अपने शीलव्रत के लिये अमर रहे तथा संसार में अपना स्थान शीलवन्ती सती स्त्रियों में प्रथम रूप में पूज्य होती रहे ॥ ६ ॥

चालणी जलेण चंपाए,
जीए उग्घाडियं दुवारतियं ।
कस्स न हरेइ चित्तं,
तीए चरिअं सुभद्दाए ॥ ७ ॥

शील के प्रभाव से ही जिस सुभद्रा सती ने कूप में से छलनी के जल से चंपानगरी के किसी से भी अनुद्घाटित कपाट तीनों के द्वारा उद्घाटित कर दिये थे, ऐसे सती का चरित्र किस चित्त को हरण नहीं करता ? ॥ ७ ॥

नंदउ नमया सुंदरी,
सा सुचिरं जीइ पालियं सीलं ।
गहिलत्तणं पि काउं
सहिआ य विडंबणा विविहा ॥ ८ ॥

वह नर्मदा सुन्दरी हमेशा जयवन्ती रहे कि जिसने पागलपन का स्वांग करके भी शीलव्रत का पालन किया, तथा शील रक्षा के लिये विविध विडम्बनाएँ सहन की ॥ ८ ॥

भद्दं कलावईए
भीसणरण्णम्मि राय चत्ताए ।
जं सा सीलगुणेणं,
छिन्नग पुण न्ना जाया ॥ ९ ॥

भयंकर जंगल में स्वपति परित्यक्ता कलावती सती का कल्याण हो कि जिसके शीलगुण के प्रभाव से छेदित हाथ पुनः जुड गये ॥ ९ ॥

शीलवईए सीलं
सक्कइ सक्को वि वरिणउं नेव ।
रायनिउत्ता सचिवा,
चउरो वि पवंचिश्रा जीए ॥ १० ॥

सती शीलवती के शील को इन्द्र भी यथार्थ रूप से वर्णन करने में समर्थ नहीं है, क्योंकि जिसने राजा द्वारा प्रेषित चारों प्रधानों को छल से छल कर शील की रक्षा की थी ॥ १० ॥

सिरी वद्धमाण पहुणा,
सुधम्मला मुत्ति जीइ पट्टविश्रो ।
सा जयउ जए सुलसा,
सारयससि विमल सील गुणा ॥ ११ ॥

श्री वर्धमान प्रभु ने भी जिसको धर्मलाभ कहलाया था, वह शरदेन्दु शीतल शीलवती सुलसा सती जगत में जयवन्ती रहे ॥ ११ ॥

हरिहरबंभ पुरंदर–
मयभंजण पंचबाणबलदप्पं ।

लीलाइ जेण दलिओ,

स थूलभद्दो दिसउ मद्दं ॥ १२ ॥

हरि-हर-ब्रह्मेन्द्र मद विगलित काम को जीतने वाला श्री स्थूलभद्र सबका कल्याण करें ॥ १२ ॥

मणहरतारुण्णभरे,

जत्थिजंतो वि तरुणि नियरेणं ।

सुरगिरि निच्चलचित्तो,

सो वयरमहारिसी जयउ ॥१३॥

अनेक युवाङ्गनाओं द्वारा मनोहर तारुण्य में विषय की प्रार्थना करने पर भी जो मेरु गिरि के समान निश्चल रहे मन से जिन्होंने भोग की इच्छा नहीं की, वे श्री वज्रस्वामी महाराज जयवन्त रहे ॥ १३ ॥

थुणिउं तस्स न सक्का,

सड्ढस्स सुदंसणस्स गुणनिवहं ।

जो विसम संकडेसु वि,

पडिओ वि अखंड सील धणो ॥१४॥

वे सुदर्शन गुण गाने में अग्रगण्य है जिन्होंने भारी संकट के समय शूली पर चढते हुए भी शील धन की रक्षा की थी ॥ १४ ॥

सुंदरी-सुनंद-चिल्लण-
　　मनोरमा अंजणा मिगावई अ।
जिणसासण सुपसिद्धा,
　　महासईओ सुहं दिंतु　　　॥१५॥

सुन्दरी, सुनन्दा, चेलणा, मनोरमा, अंजना और मृगावती आदि जिन शासन में प्रसिद्ध महासतिआं सब का कल्याण करें ॥ १५ ॥

अच्चंकरीम चरित्रं,
　　सुणिऊणं को न धुणइ क्रिर सीसं।
जा अखंडियसीला,
　　भिल्लवई कयत्थिआ वि दढं　　　॥१६॥

अच्चंकारीभट्टा का आश्चर्य जनक चरित्र सुनकर निश्चय ही कौन मस्तक नहीं नवायगा, कि भिल्लपति के द्वारा अत्यन्त कदर्थना करने पर भी जिसने अपने शील को अखण्ड रखा ॥ १६ ॥

नियमित्तं नियमाया नियजणओ,
　　नियपिया महो वा वि।

नियपुत्तो वि कुसीलो,
न वल्लहो होइ लोश्राणं ॥१७॥

स्वयं का मित्र, बन्धु, पिता या पितामह या स्वयं का पुत्र भी यदि कुशीलवन्त हो तो किसे अप्रिय नहीं होगा, तथा लोगों को भी प्रिय नहीं होगा ॥ १७ ॥

सव्वेसिं पि वयाणं,
मग्गाणं अत्थि कोइ पडिश्रारो ।
पक्कघडस्स व कन्ना,
न होइ सीलं पुणो भग्गं ॥१८॥

अन्य किसी भी खण्डित व्रत को सांधने के लिये आलोचना, निन्दा रूप प्रायश्चित का विधान है किन्तु शील-व्रत के भंग होने पर उसे ठीक करने का कोई उपाय नहीं है ॥ १८ ॥

वेश्रालभूश्ररक्खस-
केसरिचित्तयगइंदसप्पाणं ।
लीलाइ दलइ दप्पं,
पालंतो निम्मलं सीलं ॥ ११ ॥

निर्मल शील का पालन करने वाले मनुष्य वेताल, भूत, राक्षस, सिंह, चिता, हाथी और सर्प के भी अहंकार को नष्ट कर सकते हैं ॥ १६ ॥

जे केइ कम्म मुक्का,
सिद्धा सिज्झंति सिज्झिहिंति तहा।
सव्वेसिं तेसिं बलं,
विसाल सीलस्स हु ललिअं ॥२०॥

जो कोई महापुरुष सर्व कर्म का क्षय करके सिद्धि पद को वर्तमान में पाते हैं, तथा भविष्य काल में भी प्राप्त करेंगे उन सब के लिये शील का ही प्रभाव रहा था तथा रहेगा। उत्तम चरित्र तथा शील से ही सिद्धि की प्राप्ति होती है। शीलकाय चरित्र तथा उत्तम माहात्म्य शास्त्रकारों द्वारा वर्णित है, उसे पढते हुए तथा आचरते हुए शीलरत्न की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना चाहिये ॥ २० ॥

॥ इति श्री शील महिमा गर्भितं शीलकुलकस्य सरलार्थः समाप्तः ॥

卐

[७]

।। तपः कुलकम् ।।

सो जयउ जुगाई जिणो,
जस्संसे सोहए जडामऊडो ।
तवझाणग्गिपज्जलिअ-
कम्मिंधणधूमलहरिवपंतिव्व ।। १ ।।

तप तथा स्वाध्याय रूप अग्नि से भस्मीभूत कर लिया है कर्म का इन्धन जिसने ऐसे अग्निधूमशिखा के समान जाज्ज्वल्यमान जटा की केश राशि को धारण करने वाले तथा उससे शोभायमान है स्कंध जिनके ऐसे श्री युगादि प्रभु जयवंता वर्त्ते ।

संवच्छरिअ तवेणं-
काउस्सग्गम्मि जो ठिओ भयवं ।
पूरिअनियपइन्नो,
हरउ दुरिआइं बाहुबली ।। २ ।।

एक वर्ष आहार छोडकर 'काउस्सग्ग' मुद्रा से खडे रह कर जिन महात्मा ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की थी, केवलज्ञान

की प्राप्ति की थी वे बाहुबली महाराज हमारे दुरित-पाप को दूर करें ॥ २ ॥

अथिरं पि थिरं वंकं
अविउजुअं दुलहं पि तह सुलहं ।
दुस्सज्झं पि सुसज्झं,
तवेण संपज्जए कज्जं ॥ ३ ॥

तप के प्रभाव से अस्थिर कार्य भी स्थिर हो जाते हैं, वक्र कार्य भी सरल हो जाते हैं, दुर्लभ भी सुलभ हो जाता है और दुःसाध्य भी सुसाध्य बन जाता है ॥ ३ ॥

छट्ठं छट्ठेण तवं,
कुणमाणो पढमगणहरो भयवं ।
अक्खीण महाणसीओ,
सिरिगोयमसामिओ जयउ ॥ ४ ॥

छट्ठ छट्ठ का सतत तप करते हुए 'अक्षीण महानसी' नाम की महान् लब्धि को प्राप्त किया था ऐसे प्रथम गणधर श्री गौतमस्वामी महाराज जयवन्ता वर्त्तें ॥ ४ ॥

छज्जइ सणंकुमारो
तवबलखेलाइलद्धिसंपन्नो ।

निट्ठुअखवलिअंगुलिं,
सुवन्नकंति पयासंतो ॥ ५ ॥

अपने हस्त की अंगुलि को ष्ठीवन के द्वारा जिन्होंने सुवर्ण के समान प्रकाशित कर लिया ऐसे सनत्कुमार राजर्षि तपोबल से 'खेलादिक' लब्धि को पाये हुए आज भी सुशोभित हो रहे हैं ॥ ५ ॥

गोबंभगब्भगब्भिणी,
बंभिणीधायाइ गुरुअपावाई ।
काऊण वि कयणं पिव,
तवेण सुद्धो दढप्पहारी ॥ ६ ॥

गौ, ब्राह्मण, गर्भ और गर्भवती ब्राह्मणी स्त्री इन चारों की हत्या करना महापाप है किन्तु इस प्रकार के पापों के प्रायश्चित के रूप में दृढप्रहारी महान् कठोर तप करके शुद्ध हो गये थे वे हमारा कल्याण करें तथा प्रेरणा दे कि हम गौ, ब्राह्मण, गर्भ तथा गर्भवती ब्राह्मणी का मन भी न दुखाये तथा जब जब अवसर मिले इन्हें सन्तुष्ट कर पुन्य लाभ लेवे ॥ ६ ॥

पुव्वभवे तिव्वतवो,
तविश्रो जं नंदिसेण महरिसिणा।
वासुदेवो तेण पिश्रो,
जाओ खयरी सहस्साणं ॥ ७ ॥

पूर्व भव में नंदिषेण महर्षि ने उग्र तप किया जिसके प्रभाव से वासुदेव हुए वे हजारों विद्याधारियों के पति बने ॥ ७ ॥

देवा वि किंकरन्तं,
कुणंति कुल जाइ विरहिआणं पि।
तव मंतपभावेणं,
हरिकेसबलस्स व रिसिस्स ॥ ८ ॥

तीव्र तप रूप मन्त्र के प्रभाव से हरिकेशीबल ऋषि के पास कुल जातिहीन भले ही न हो किन्तु उनका भी दासत्व देवताओं ने स्वीकार किया था ॥ ८ ॥

पडसय मेगपडेणं
एगेण घडेण घडसहस्साइं।
जं किर कुणंति मुणिणो,
तवकप्पतरुस्स तं खु फल ॥ ९ ॥

मुनिराज जो एक वस्त्र से सहस्रों वस्त्र तथा एक घट से सहस्रों घट निर्मित करते हैं वह निश्चय ही तपस्या रूपी कल्पवृत्त का ही फल है ॥ ९ ॥

अनिआणस्स विहिए,
तवस्स तविअस्स किं पसंसामो ।
किज्जइ जेण विणासो
निकाईयाणं पि कम्माणं ॥ १० ॥

जिससे निकाचित कर्मों का भी नाश हो जाता है उन नियाणा रहित विधिपूर्वक किये गये तप की हम कितनी प्रशंसा करें ? ॥१०॥

अईदुक्करतवकारी,
जगगुरुणा कराह पुच्छिएण तया ।
वाहरिओ सो महप्पा,
समरिज्जउ ढंढणकुमारो ॥ ११ ॥

अठारह हजार मुनिओं में अति दुष्कर तप करने वाले साधु कौन है ? ऐसा कृष्ण के पूछे जाने पर जगद्गुरु श्री नेमि प्रभु ने जिनकी प्रशंसा की थी वे ढंढण मुनि हमेशा स्मरणीय है ॥११॥

पइदिवसं सत्तजगो, वहिऊण
गहियवीरजिणदिक्खो ।
दुग्गाभिग्गह निरत्रो,
अज्जुणत्रो मालित्रो सिद्धो ॥ १२ ॥

नित्य सात सात मनुष्यों का वध करने वाला भी वीर प्रभु के पास दीक्षा ग्रहण करने पर घोर दुष्कर तप के कारण अपने पापों से मुक्त हो गया था वे थे अर्जुनमाली महात्मा जिन्होंने इतना दुष्कर तप किया था ॥१२॥

नंदीसररुअगेसु वि
सुरगिरिसिहरे वि एगफालाए ।
जंघा चारणमुणिणो,
गच्छंति तवप्पभावेणं ॥ १३ ॥

नंदीश्वर नाम के आठवें द्वीप में रुचक नाम के तेरवे द्वीप में, उसी प्रकार मेरूपर्वत के शिखर पर एक फलांग मात्र में जो जंघाचारण तथा विद्याचारण मुनि जाते हैं वह सब तप का ही प्रभाव है ॥१३॥

श्रेणिय पुरत्रो जेसिं,
पसंसित्रं सामिणा तवोरूवं ।

ते धन्ना धन्नमुणी,
दुन्नवि पंचुत्तरे पत्ता ॥ १४ ॥

श्रेणिक राजा के सम्मुख श्री वीर परमात्मा ने जिनका तप स्वरूप वर्णन किया था वे धन्नो मुनि (शालिभद्र के बहनोई) और धन्ना काकंदी दोनों मुनि ने अपने तप के प्रभाव से सर्वार्थसिद्ध विमान में गमन किया ॥१४॥

सुणिऊण तव सुंदरी-
कुमरीए अंबिलाण अणवरयं ।
सट्ठिं वाससहस्सा,
भण कस्स न कंपए हिअयं ॥ १५ ॥

श्री ऋषभदेव स्वामी की पुत्री सुन्दरी ने ६० हजार वर्ष पर्यन्त सतत आयंबिल करके जो आदर्श उपस्थित किया है यह जानकर किसका हृदय कंपित नहीं होगा ? ॥१६॥

जं विहिअमंबिल तवं
बारस वरिसाइं सिवकुमारेण ।
तं दठ्ठु जंबुरूवं,
विम्हइओ(सेणिओ)कोणिओ राया ॥१६॥

पूर्व में शिवकुमार के भव में बारह वर्ष पर्यन्त आयंबिल तप करके उसके प्रभाव से जंबुकुमार को ऐसा अद्भुद रूप मिला कि उसको देखकर (श्रेणिक) कोणिक राजा भी विस्मित हो गया ॥ १६ ॥

जिणकप्पिअ परिहारिअ,
पडिमापडिवन्नलंदयाईणं ।
सोऊण तव सरूवं,
को अन्नो वहउ तवगव्वं ॥१७॥

जिन कल्पी, परिहार विसुद्धि, प्रतिमाप्रतिपन्न एवं यथालंदी साधुओं का उग्र तप देख कर क्या अन्य तपस्वी स्वयं के तप का गर्व कर सकता है ? ॥१७॥

मासद्धमासखवओ,
बलभद्दो रूववं पि हु विरत्तो ।
सो जयउ रणवासी,
पडिबोहिअ सावय सहस्सो ॥१८॥

अत्यन्त स्वरूपवान् होने पर भी अरण्य में रहने वाले, जिन्होंने सहस्रों श्वापद पशुओं को प्रतिबोध दिया वे मास तथा अर्द्ध मास की तपश्चर्या करने वाले बलभद्र मुनि जयवन्ता वर्त्ते ॥१८॥

थरहरिअधरं झलहलिअ-
सायरं चलिय सयल कुल सेलं ।
जमकासी जयं विराहु,
संघकए तं तवस्स फलं ॥१६॥

श्री संघ का कष्ट निवारण करने हेतु जब विष्णुकुमार ने लाख योजन पर्यन्त शरीर का विस्तार कर विजय को प्राप्त किया, तब पृथ्वी कम्पित हो गई थी, तथा पर्वत प्रकम्पित होकर डोल उठे यह सब तप का ही प्रभाव तो है ॥१६॥

किं बहुणा भणिएणं ?
जं कस्स वि कह वि कत्थ वि सुहाइं ।
दीसंति भवणमज्झे,
तत्थ तवो कारणं चेव ॥२०॥

तप के प्रभाव का कहां तक वर्णन करें, सार में यही कहता हूं कहीं भी तीनों जगत में जहां भी सुख समाधि मिलती है वहां बाह्य तथा आभ्यंतर तप ही कारण है अतः सुख के चाहने वाले को उसका आराधन करने के लिये यथा विध प्रयत्न करना चाहिये ॥२०॥

॥ इति श्री तपकुलकस्य सरलार्थः समाप्तः ॥

[८]

।। भाव कुलकम् ।।

कमठासुरेणरइयम्मि,
भीसणो पलयतुल्ल जलबोले ।
भावेण केवललच्छि,
विवाहिओ जयउ पास जिणो ।। १ ।।

कमठ नाम के असुर के द्वारा किये गये उपद्रव जो भयंकर प्रलय काल के जल के समान भीषण था, उस समय सम भाव को धारण करने से जिन्होंने केवलज्ञान रुप लक्ष्मी का वरण किया वे श्री पार्श्व जिन जयवन्ता वर्ते ।। १ ।।

निच्चुराणो तंबोलो,
पासेण विणा न होइ जह रागो ।
तह दाणसीलतवभावणाओ
अहलाओ सव्व भावविणा ।। २ ।।

जिस प्रकार से कत्था तथा चूना बिना लगाये पान एवं पास दिये बिना वस्त्र रंग नहीं लाता उसी तरह बिना भावना से दान, शील तथा तप रंग नहीं लाते ।। २ ।।

मणिमंत ओसहीणं,
जंततंताण देवयाणं पि ।
भावेण विणा सिद्धि,
न हु दीसइ कस्स वि लोए ॥ ३ ॥

मणि, मन्त्र औषधि यन्त्र और तन्त्र एवं देवताओं की साधना किसी की भी बिना भावना के सफली भूत नहीं हुई है । भाव योग से ही सिद्धि संभव है ॥ ३ ॥

सुहभावणावसेणं,
पसन्नचंदो मुहुत्तमित्तेण ।
खविऊण कम्मगंठिं,
संपत्तो केवलं नाणं ॥ ४ ॥

शुभ भावनाओं के संयोग से प्रसन्नचन्द्र राजर्षि ने एक ही मुहूर्तमात्र में कर्म ग्रन्थि की भेदना कर कैवल्य प्राप्त किया था ।

सुस्सूसंती पाए,
गुरुणीणं गरिहिऊण नियदोसे ।
उप्पन्न दिव्वनाणा,
मिगावई जयउ सुह भावा ॥ ५ ॥

करते हुए शुभ भाव को प्राप्त हुआ था तथा उससे जाति-स्मरण ज्ञान हुआ था ॥ ७ ॥

खवगनिमंतणपुव्वं,
वासिअ भत्तेण सुद्ध भावेण ।
भुंजंतो वरनाणं,
संपत्तो कूरगडूवि(कूरगडुओ) ॥ ८ ॥

नवकारसी के समय मिले हुए निर्दोष आहार के उपवासी साधुओं को पारणा के लिये निमन्त्रण देते हुए कूरगडू मुनि भी शुद्ध भाव से केवलज्ञान को प्राप्त हुए थे ॥ ८ ॥

पूव्वभवसूरि विरइअ-
नाणासाअणपभावदुम्मेहो ।
नियमानं झायंतो,
मासतुसो केवली जाओ ॥ ९ ॥

पूर्व भव में आचार्य पद में की गई ज्ञानाशातना के प्रभाव से बुद्धिहीन हो गये तथा निज नाम के ध्याता "मा तुष् मा रुष्" अर्थात् 'किसी पर भी राग या रीस न करें' बताए हुए परमार्थ में लयबद्ध हुए 'मास तुस मुनि' शुभ भाव से घातिक कर्मों का घात कर कैवल्य को प्राप्त हुए थे ॥ ९ ॥

करते हुए शुभ भाव को प्राप्त हुआ था तथा उससे जाति-स्मरण ज्ञान हुआ था ॥ ७ ॥

खवगनिमंतणपुव्वं,
वासिअ भत्तेण सुद्ध भावेण ।
भुंजंतो वरनाणं,
संपत्तो कूरगड्डूवि(कूरगड्डुओ) ॥ ८ ॥

नवकारसी के समय मिले हुए निर्दोष आहार के उपवासी साधुओं को पारणा के लिये निमन्त्रण देते हुए कूरगड्डु मुनि भी शुद्ध भाव से केवलज्ञान को प्राप्त हुए थे ॥ ८ ॥

पूव्वभवसूरि विरइअ-
नाणासाअणपभावदुम्मेहो ।
नियमानं झायंतो,
मासतुसो केवली जाओ ॥ ९ ॥

पूर्व भव में आचार्य पद में की गई ज्ञानाशातना के प्रभाव से बुद्धिहीन हो गये तथा निज नाम के ध्याता "मा तुष् मा रुष्" अर्थात् 'किसी पर भी राग या रीस न करें' बताए हुए परमार्थ में लयबद्ध हुए 'मास तुस् मुनि' शुभ भाव से घातिक कर्मों का घात कर कैवल्य को प्राप्त हुए थे ॥ ९ ॥

हत्थि मि समारूढा,
रिद्धि दट्ठुण उसभसामिस्स ।
तक्खण सुह झाणेणं,
मरुदेवी सामिणी सिद्धा ॥ १० ॥

हस्ति के स्कंध पर आरूढ होते हुए भी मरुदेवी माता ऋषभदेव स्वामी की तीर्थङ्कर अवस्था की ऋद्धि-सिद्धि देख कर तत्काल शुभ ध्यान से अंतकृत् केवली होकर मोक्ष को प्राप्त हुई थी ॥ १० ॥

पडिजागरमणीए,
जंघाबलखीण मन्निआपुत्तं ।
संपत्त केवलाए,
नमो नमो पुप्फचूलाए ॥ ११ ॥

क्षीण जंघाबलवाले ऐसे अर्णिकापुत्र आचार्य की शुभ भाव से सेवा करते जिसे केवलज्ञान प्राप्त हुआ वे साध्वी पुष्पचूला को पुनः पुनः नमस्कार हो ॥ ११ ॥

पन्नरसयतावसाणं,
गोअमनामेण दिन्नदिक्खाणं ।

उप्पन्नकेवलाणं,

सुहभावाणं नमो ताणं ॥१२॥

जीवस्स सरीराओ,

भेअं नाउं समाहिपत्ताणं।

उप्पाडिअ नाणाणं,

खंदकसीसाणं तेसिं नमो ॥१३॥

गौतमस्वामी ने जो पन्द्रह सौ तापसों को दीक्षा दी तथा उन्हें शुभ भाव से केवलज्ञान हुआ था उन्हें नमस्कार हो। पापी पालक द्वारा यन्त्र में पीसे जाते हुए भी जीव को शरीर से भिन्न मान कर समाधिस्थ होने पर जिन्हें केवलज्ञान हुआ था उन 'स्कंदकसूरि के समस्त शिष्यों को नमस्कार हो ॥ १२-१३ ॥

सिरि वद्धमाणपाए,

पूयंती सिंदुवार कुसुमेहिं।

भावेणं सुरलोए,

दुग्गयनारी सुहं पत्ता ॥ १४ ॥

श्री वर्धमान स्वामी के चरणों को सिन्दुवार के फूलों से पूजा करने की इच्छा करने वाली 'दुर्गता नारी' शुभ ध्यान के कारण सुख को प्राप्त हुई ॥ १४ ॥

भावेण भुवणनाहं,
वंदेउं दद्दुरोवि संचलिओ।
मरिऊण अंतराले,
नियनामंको सुरो जाओ ॥ १५ ॥

नंद मणीआर का जीव मेंढक हुआ, किन्तु भुवन गुरु श्री वर्धमान स्वामी को समवसरित जान कर भाव से वंदन करने चला, वहां रास्ते में ही घोड़े की खुर के नीचे पिस कर मर गया किन्तु शुभ भाव के कारण निज नामांकित 'दर्दुरांक' नाम का देव हुआ ॥ १५ ॥

विरयाविरयसहोदर,
उदगस्स भरेण भरिअसरिआए।
भणियाइ साविगाए,
दिन्नो मग्गुत्ति भाववसा ॥१६॥

विरत साधु तथा अविरत (श्रावक राजा) जो दोनों सगे भाई थे, उन्हें उद्देशित कर दीक्षा लेने के पश्चात् हमेशा मेरे देवर मुनि भोजन करते हुए भी उपवासी तथा मेरे पति भोग भोगते हुए भी ब्रह्मचारी हों तो हे नदी! मुझे रास्ता देना। इस प्रकार उक्त के मुनि के दर्शन करने जाती

हुई तथा लौटती हुई रानी ने भरपूर बहती हुई नदी से कहा था और नदी ने रास्ता दे दिया था। यह सब शुभ स्वाध्याय का ही कारण था ॥ १६ ॥

सिरिचंडरुद्दगुरुणा,
ताडिज्जंतो वि दंडघाएणं।
तक्कालं तस्सीसो,
सुहलेसो केवली जाओ ॥ १७ ॥

श्री चंडरुद्र नाम के गुरु के द्वारा दण्ड से ताडन करने पर भी उसी दिन का नव दीक्षित मुनिशिष्य तत्काल केवल ज्ञान को प्राप्त हुआ था, यह शुभ लेश्या के भाव का ही फल है ॥ १७ ॥

जं न हु भणिओ बंधो,
जीवस्स वहं वि समिइगुत्ताणं।
भावो तत्थ पमाणं,
न पमाणं कायवावारो ॥ १८ ॥

समिति गुप्तिवंत साधुओं से उपयोग रखते हुए भी कहीं जीव की हिंसा हो जाय तो भी जीव का वध नहीं माना जाता क्योंकि उसमें अहिंसक भाव यही इसका कारण है। कायव्यापार प्रमाणभूत नहीं माना जाता है ॥ १८ ॥

भावच्चिअ परमत्थो,
भावो धम्मस्ससाहगो भणिओ।
सम्मत्तस्स वि बीअं,
भावच्चिय बिंति जगगुरुणो ॥ १९ ॥

आत्मा का शुभ भाव ही परमार्थ तत्व है, भाव एवं श्रद्धा ही धर्म का साधक है। तथा भाव ही सम्यक्त्व का बीज है। ऐसा त्रिभुवन गुरु श्री तीर्थङ्करों का उपदेश है ॥१९॥

किं बहुणा भणिएणं,
तत्तं निसुणेह भो महासत्ता।
मुक्खसुहबीयभूओ,
जीवाण सुहावओ भावो ॥२०॥

अधिक क्या कहूँ, हे महा सत्वशालिओं! मैं तत्वस्वरूप एक ही वचन कहता हूँ सुनो! मोक्ष सुख का बीज स्वरूप भाव ही है और वही जीवों के लिये सुखकारी है ॥ २० ॥

इअदाणसीलतवभावणाओ,
जो कुणइ सत्तिभत्ति परो।

देविंदविंदमहिग्रं,
अइरा सो लहइ सिद्धिसुहं ॥ २१ ॥

इस प्रकार दान शील तप और भावना विध चतुर्विध को जो धर्मात्मा शक्ति और भक्ति के अनुरूप उल्लास से करते हैं, वे इन्द्रों के समूह से पूजित ऐसे अक्षय मोक्ष सुख को अल्पकाल में प्राप्त कर सकते हैं।

इस कुलक में अन्तिम में ग्रन्थकार ने अपना नाम 'देबेन्द्र सूरि' अन्तः रूप से अभिलिखित किया है इनके खरे वचनों का पालन ही कल्याण का मार्ग है।

॥ इति श्री भाव कुलकस्य हिन्दी सरलार्थः समाप्तः ॥

卐

[६]

।। अथ अभव्य कुलकम् ।।

जह अभविय जीवेहिं,
न फासिया एवमाइया भावा ।
इंदत्तमणुत्तरसुर,
सिलायनर नारयत्तं च ॥१॥

अब अभव्यों के विषय में कहता हूं. जिन्हें भावों का स्पर्श भी नहीं हुआ है ।

(१) इन्द्रत्व, (२) अनुत्तरवासी देवत्व, (३) त्रेंसठ सलका पुरुषत्व तथा (४) नारदत्व ये कदापि अभव्यों को प्राप्त नहीं हो सकते ॥१॥

केवलिगणहर हत्थे,
पव्वज्जा तित्थवच्छरं दाणं ।
पवयणसुरी सुरत्तं,
लोगंतिय देवसामित्तं ॥२॥

(५) पुनः अभव्य जीवों केवली तथा गणधरों के हाथ से दीक्षा (६) श्री तीर्थंकर का वार्षिकदान (७) प्रवचन की

अधिष्ठायिका देवी तथा देवत्व (८) लोकान्तिक देवत्व तथा देवपति पद न प्राप्त कर सकते हैं ॥२॥

तायत्तीससुरत्तं,
परमाहम्मियजुयलमणुअत्तं ।
संभिन्नसोय तह,
पुव्वधराहारयपुलायत्तं ॥३॥

त्रायत्रिंशकदेवत्व, पन्द्रह जाति–परमाधामी देवत्व (१२) युगलिक मनुष्यपन, (१३) संभिन्नश्रोत लब्धि (१४) पूर्वधरलब्धि, (१५) आहारकलब्धि और पुलाकलब्धि इतने अभव्यों को प्राप्त नहीं होते ॥३॥

मइनाणाई सुलद्धी,
सुपत्तदाणं समाहिमरणत्तं ।
चारणदुगमहुसप्पिय–
खीरासवखीणठाणत्तं ॥४॥

तित्थयरतित्थपडिमा,
तणुपरिभोगाइ कारणे वि पुणो ।
पुढवाइय भावम्मि वि,
अभव्वजीवेहिं नो पत्तं ॥५॥

(१६) मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञानादिक शुभज्ञान की लब्धि, सुपात्र में दान (१६) समाधि मरण (२०) विद्याचारण तथा (२१) जंघाचारण की लब्धि (२२) मधुसर्पिलब्धि (२३) क्षीराश्रव लब्धि और अभव्य (२४) अक्षीण महानसी लब्धि भी नहीं प्राप्त कर सकता। तीर्थङ्कर तथा तीर्थंकर के शरीर तथा प्रतिमा में उपयोगी पृथ्वीकायादि भावों को भी प्राप्त नहीं करता ॥४-५॥

चउदसरयणत्तं पि,
पत्तं न पुणो विमाण सामित्तं।
सम्मत्तनाण संयम–
तवाइ भावा न भाव दुगे ॥६॥

(२६) चक्रवर्तिओं के चौदह रत्न (२७) विमानाधिपतित्व प्राप्त नहीं होता, फिर सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्र और तप आदि भावों तथा क्षायिक और क्षायोपशमिक दोनों भाव भी प्राप्त नहीं करते ॥ ६ ॥

अणुभवजुत्ता भत्ती,
जिणाण साहम्मियाण वच्छल्लं।
न य साहइ अभव्वो,
संवेगत्तं न सुकपक्खं ॥ ७ ॥

अभव्यजीव (२८) अनुभव युक्त भक्ति (२९) जिनाज्ञा-नुसार साधर्मिवात्सल्य, (३०) संसार से वैराग्य और (३१) शुक्ल पाक्षिकपन ये प्राप्त नहीं कर सकते ॥७॥

जिणजणयजणणि जाया,
जिणजक्खजक्खिणी जुगपहाणा ।
आयरियपयाइदसगं,
परमत्थ गुणड्ढमप्पत्तं ॥ ८ ॥

(३२) जिनेश्वर की माता उनके पिता, स्त्री, यक्ष, यक्षणी और (३३) युगप्रधान भी नहीं हुए हैं पुनः (३४) विनय योग्य आचार्यादि दश स्थानों तथा परमार्थ से अधिक गुणवन्तपणा उन्हें भी प्राप्त नहीं होता है ॥ ८ ॥

अणुबंधहेउसरूवा,
तत्थ अहिंसा तिहा जिणुदिट्ठा ।
दव्वेण य भावेण य,
दुहा वि तेसिं न संपत्ता ॥ ९ ॥

पुनः (३५) अनुबन्ध हेतु और स्वरूप इस प्रकार तीन प्रकार से श्री जिनेश्वर द्वारा कही हुई अहिंसा भी द्रव्य या भाव से उन्हें कभी प्राप्त नहीं होती है ॥ ९ ॥

॥ इति श्री अभव्य कुलकस्य हिन्दी सरलार्थः समाप्तः ॥

[१०१]

।। पुण्य-पाप कुलकम् ।।

छत्तीस दिणसहस्सा,
वाससये होइ आउपरिमाणं ।
झिज्झंतं पइसमयं,
पिच्छओ धम्मम्मि जइ अव्वं ।।१।।

सौ वर्ष के आयुष्य वाले को छत्तीस हजार दिन का प्रमाण होता है। वह समय समय पर कम होता जाता है, यह जानकर धर्म में यत्न करना चाहिये ।। १ ।।

जइ पोसह सहीओ,
तव नियमगुणेहिं-गम्मइ एगदिणं ।
ता बंधइ देवाउ,
इत्तियमित्ताईं पलियाइं ।।२।।

जो कोई जीव पोसह पूर्वक तप करे और पाप का त्याग करें तथा इन गुणों से युक्त एक दिन भी व्यतीत करें तो तीसरी गाथा में वर्णित पल्योपम आयुष्य देवगति का प्राप्त करता है ।।२।।

सगवीसं कोडिसया,
सतत्तरी कोडिलक्ख सहस्सा य।
सत्तसयसत्तहुत्तरि,
नवभागा सत्तपलियस्स ॥३॥

सत्ताइस सौ करोड, सतहत्तर कोटि सतहत्तर लाख सतहत्तर हजार सातसौ और सतहत्तर जितने पल्योपम और तथा एक पल्योपम के नौभाग करे उतने सात भाग $\frac{7}{9}$ जितना देवगति का आयुष्य एक पोसह करने वाले को प्राप्त होता है ॥३॥

अट्ठासीई सहस्सा,
वाससए दुरिणलक्ख पहराणं।
एगो विअ जइ पहरो,
धम्मजुओ ता इमो लाहो ॥४॥

तिसयसगंचत्त कोडि,
लक्खा बावीस सहस बावीसा।
दुसय दुवीस दुभागा,
सुराउबंधो य इग पहरे ॥५॥

एक सौ वर्ष के आयुष्य में कुल दो लाख और अट्ठासी

हजार प्रहर होते है उसमें यदि एक भी प्रहर धर्म युक्त [पोसह-व्रत युक्त] जावे तो उन्हें जो लाभ होगा वह वर्णन करते है।

तीन सौ सुडतालीस कोटि बाइस लाख बाइस हजार दो सौ बाइस तथा ऊपर पल्योपम के दो भाग करे उतने नौ भाग ; जितना देवगति का आयुष्य का बन्ध एक प्रहर (पौषध) करने से होता है ॥ ४–५ ॥

दसलक्ख असीय सहसा,
मुहुत्तसंखा य होइ वाससए।
जइ सामाइअ सहिओ,
एगो वि अ ता इमो लाहो ॥६॥

बाणवई कोडिओ,
लक्खा गुणसट्ठि सहस पणवीसं।
नवसयपणवीसजुआ,
सतिहा अडभाग पलियस्स ॥७॥

सौ वर्ष के आयुष्य में मुहूर्त्त दस लाख अस्सी हजार होते है, उसमें जो एक मुहूर्त भी सामायिक में जावें तो जो लाभ होगा उसका वर्णन करता हूं ॥ ६ ॥

बराणवे कोटि, उनसाठ लाख, पच्चीस हजार नौ सौ पच्चीस ऊपर एक पल्योपम के नौ भाग करे ऐसे एक तृतीयांश सहित आठ भाग ($\frac{8}{9}+\frac{1}{3}$) (९२५९ २५९२५) ($\frac{8}{9}+\frac{1}{3}$) पल्योपम जितना देवगति का आयुष्य एक दुघडिये के सामायिक में जीव बांध सकता है ॥ ७ ॥

वाससये घडिआणं,
लक्खा इगवीस सहस तह सट्ठी।
एगा वि अ धम्मजुआ,
जइ ता लाहो इमो होइ ॥८॥

छायाल कोडी गुणतीस,
लक्ख छासठ्ठी सहस्स सयनवगं।
तेसठ्ठी किं चूणा,
सुराउ बंधेइ इग घडिए ॥९॥

एक सौ वर्ष में घडियां इक्कीस लाख साठ हजार होती है उसमें से एक घडी भी धर्मयुक्त व्यतीत हो तो सैतालीस कोटी उनतीस लाख, छासठ हजार नौ सौ और तिरसठ पल्योपम में कुछ कम जितना देवगति का आयुष्य का बन्ध होता है एक घडी भर की समता के कारण ॥ ८ ॥ ९ ॥

सट्ठी अहोरत्तेणं,
　　घडीआओ जस्स जंति पुरिसस्स ।
नियमेणवि रहिआओ,
　　सो दिअहओ निप्फलो तस्स　　॥१०॥

एक दिवस तथा रात्रि की मिलकर साठो घडी जिसकी निष्फल जाती है व्रत नियम से रहित जाती है उस जीवन में वे रात दिन निष्फल गये जानना चाहिये ॥ १० ॥

चत्तारि अ कोडिसया,
　　कोडिओ सत्तलक्ख अडयाला ।
चालीसं च सहस्सा,
　　वाससए हुंति ऊसासा　　॥११॥

एक घडी में एक हजार आठ सौ साठ छियासी श्वासोच्छ्वास होते है उस प्रमाण से एक सौ वर्ष में चारसौ सात कोटी अडतालीस लाख, चालीस हजार (४०७४८४००००) श्वासोच्छ्वास होता है ॥ ११ ॥

इक्को वि अ ऊसासो,
　　न य रहिओ होइ पुण्णपावेहिं ।

जइ पुराणेणं सहिओ,
एगो वि अ ता इमो लाहो ॥१२॥

उसमें से एक भी श्वासोच्छ्‌वास पुण्य से सहित तथा पाप से रहित न हो तो उसका निम्न फल प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

लक्ख दुग सहस पणचत्तं,
चउसया अट्ठ चेव पलियाइं ।
किं चूणा चउभागा,
सुराउबंधो इगुसासे ॥१३॥

दो लाख पैंतालीस हजार चार सौ आठ पल्योपम ऊपर एक पल्योपम के नौ भाग करे ऐसे कुछ न्यून भाग चार जितना (२४५४०८ $\frac{४}{९}$) देवगति का आयुष्य बंधित होता है ॥ १३ ॥

एगुणवीसं लक्खा,
तेसट्ठी सहस्स दुसय सतसट्ठी ।
पलियाइं देवाउ,
बंधई नवकार उस्सग्गे ॥१४॥

एक नवकार के कायोत्सर्ग में आठ श्वासोच्छ्वास होते हैं, अतः उन्नीस लाख तिरसठ हजार दो सौ सडसठ पल्योपम का देवगति आयुष्य एक नवकार मन्त्र का कायोत्सर्ग करने वाला जीव बांधता है ॥ १४ ॥

लक्खिग सट्ठी पणतीस,
सहस दुसय दसपलिय देवाउ ।
बंधइ अहियं जीवो,
पणवीसुसासउस्सग्गे ॥१५॥

इकसठ लाख पैंतीस हजार दो सौ दस पल्योपम से कुछ अधिक देवगति का आयुष्य पच्चीस श्वासोच्छ्वास (एक लोगस्स) का काउस्सग्ग करने वाला जीव बांधता है ॥ १५ ॥

एवं पावपरायाणं,
हवेइ निरयाउ अस्स बंधो वि ।
इअ नाउं सिरि जिणकित्ति-
अम्मिधम्मम्मि उज्जमं कुणह ॥१६॥

हे भव्य जीवो ! इस प्रकार वर्णित प्रमाण से पाप करने वाले के ऊपर उतने प्रमाण में नरक का आयुष्य बन्ध भी करना पड़ता है, यह जानकर श्री जिनेश्वर कथित धर्म विषय में उद्यम करो । तथा विद्वान् साधु एवं सत्पात्र में दान दो । यहां भी कर्ता ने अपना नाम जिनकीर्ति सूचित किया है ॥ १६ ॥

॥ इति श्री पुण्य-पाप कुलकस्य हिन्दी सरलार्थः समाप्तः ॥

[११]

।। श्री गौतम कुलकम् ।।

लुद्धा नरा अत्थपरा हवंति,
मूढा नरा काम परा हवंति ।
बुद्धा नरा खंति परा हवंति,
पिस्सा नरा तिन्नि वि आयरंति ।। १ ।।

लोभी पुरुषों धन का लालची होते हैं, मूर्ख पुरुषों काम भोग में तत्पर रहते हैं, तत्वज्ञों क्षमा में तत्पर होते हैं, तथा मिश्र पुरुषों धन काम और क्षमा तीनों में तत्पर रहते हैं।।१।।

ते पंडिया जे विरया विरोहे,
ते साहुणो जे समयं चरंति ।
ते सत्तिणो जे न चलंति धम्मं,
ते बंधवा जे वसणे हवंति ।। २ ।।

जो विरोध से विरमे वे ही सच्चे पण्डित है, जो सिद्धान्तानुसार चलते है वे ही सच्चे साधु है । जो धर्म से विचलित नहो वे ही सच्चे सत्त्व वंत है तथा जो आपत्ति में अपने सहायक हो वे ही सच्चा बन्धु है ।। २ ।।

कोहाभिभूया न सुहं लहंति,
माणंसिणो सोयपरा हवंति ।
माया विणो हुंति परस्स पेसा,
कुद्धा महिच्छा नरयं उविंति ॥ ३ ॥

जो क्रोध से युक्त है उन्हें सुख नहीं, मानी शोकातुर अवस्था को प्राप्त करता है, मायावी पराया नौकर बनता है तथा लोभ की अधिक तृष्णावाला जीव नरक में उत्पन्न होता है ॥ ३ ॥

कोहो विसं किं अमयं अहिंसा,
माणो अरी किं हियमप्पमाओ ।
माया भयं किं सरणं तु सच्चं,
लोहो दुहं किं सुहमाह तुट्ठि ॥ ४ ॥

क्रोध महान् विष है, अहिंसा अमृत है, मान शत्रु है, अप्रमाद हितैषी मित्र है, माया भय है, सत्य शरण है, लोभ दुःख है तथा संतोष सुख कहा गया है ॥ ४ ॥

बुद्धि अचंडं भयए विणीयं,
कुद्धं कुसीलं भयए अकित्ती ।

सभिन्न चित्तं भयए अलच्छी,
　　सच्चेट्ठियं संभयए सिरी य　　॥ ५ ॥

विनयवंत तथा सौम्य प्रकृति वाले मनुष्य के लिये बुद्धि तत्पर रहती है क्रोधी तथा कुशीली अपकीर्ति का पात्र बनता है, व्रतभंगी अलक्ष्मी का पात्र बनता है तथा सत्य में स्थिर लक्ष्मी का पात्र बनता है ॥ ५ ॥

चयंति मित्ताणि नरं कयग्घं,
　　चयंति पावाइं मुणिं जयंतं ।
चयंति मित्ताणि नरं कयग्घं,
　　चयंति बुद्धी कुवियं मणुस्सं　　॥ ६ ॥

कृतघ्न पुरुष को मित्र छोड देते हैं । जयणा वाले मुनि को पाप छोड देते हैं । सूखे हुए सरोवर को हंस छोड देते हैं । तथा कोपवन्त मनुष्य को बुद्धि छोड देती है ॥ ६ ॥

अरो अइत्थे कहिए बिलावो,
　　असपहारे कहिए बिलावो ।
विक्खित्त चित्ते कहिए बिलावो,
　　बहु कुसीसे कहिए बिलावो　　॥ ७ ॥

सुनने वाले को रुचिकर न लगे ऐसा वचन तो विलाप के समान होता है, एकाग्रता हीन पुरुष को कुछ कहना विलाप के समान है, तथा परवश चित्त है जिसका उसे भी कहना विलाप के समान है, एवं कुशिष्य को भी कहना विलाप के समान है ॥ ७ ॥

दुट्ठा दंनिवा डपरा हवंति,
विज्जाहरा मंत परा हवंति ।
मुक्खा नरा कोव परा हवंति,
सुसाहुणो तत्तपरा हवंति ॥ ८ ॥

दुष्ट राजा दण्ड देने में तत्पर होते हैं, विद्याधर मन्त्र साधना में तत्पर होते हैं, मूर्ख पुरुष कोप करने में तत्पर होते हैं, उत्तम साधु तत्व साधने में तत्पर होते हैं ॥८॥

सोहाभवे उग्गतवस्स खंती,
समाहि जोगो पसमस्स सोहा ।
नाणं सुझाणं चरणस्स सोहा,
सीसस्स सोहा विणए पवित्ती ॥ ९ ॥

क्षमा उग्रतप से सुशोभित होती है, समाधियोग में उपशम की शोभा है, ज्ञान और शुभध्यान चरित्र की शोभा है ॥ ९ ॥

अभूसणो सोहइ बंभयारी,
अकिंचणो सोहइ दिक्खधारी।
बुद्धिजुओ सोहइ रायमंती,
लज्जाजुओ सोहइ एगपत्ती ॥१०॥

ब्रह्मचारी आभूषण बिना भी सुशोभित होता है। दीक्षाधारी परिग्रह त्याग से सुशोभित होता है। राजा का मन्त्री बुद्धि युक्त होने पर ही सुशोभित होता है, लज्जालु मनुष्य एक पत्नी व्रत पालने से सुशोभित होते हैं ॥१०॥

अप्पाअरी होइ अणवट्ठिअस्स,
अप्पाजसो सीलमओनरस्स।
अप्पा दुरप्पा अणविट्ठंयस्स,
अप्पा जिअप्पा सरणं गई अ ॥११॥

अनवस्थित चित्तवाला जो स्वयं अपनी आत्मा का शत्रु है, शीलवंत पुरुषों का आत्मा ही उनका यश है, असंजमी की स्वयं की आत्मा ही शत्रु है, तथा इन्द्रियों को जीत कर अपनी आत्मा को वश में करें, उस जितात्मा का वह स्वयं शरण तथा आश्रयी है ॥ ११ ॥

न धम्मकज्जा परमत्थिकज्जं,
न पाणिहिंसा परमं अकज्जं ।
न पेमरागा परमत्थि बंधो,
न बोहिलाभा परमत्थि लाभो ॥१२॥

धर्म कार्यों से श्रेष्ठ दूसरा कोई कार्य नहीं है, जीव हिंसा से बढकर दूसरा कोई अकार्य नहीं है, प्रेमराग के बन्धन से उत्कृष्ट कोई बन्धन नहीं है तथा बोधि लाभ से उत्कृष्ट कोई लाभ नहीं है ॥ १२ ॥

न सेवियव्वा पमया परक्का,
न सेवियव्वा पुरिसा अविज्जा ।
न सेवियव्वा अहमा निहीणा,
न सेवियव्वा पिसुणा मणुस्सा ॥१३॥

बुद्धिमान पुरुष को परस्त्री सेवन नहीं करना चाहिये, उच्च कुलवान् होते हुए विद्याहीन की सेवा नहीं करना चाहिये, आचार से भ्रष्ट हों उसे तथा नीच कुलवान् को भी नहीं सेवना चाहिये, तथा चुगलखोर की सेवा भी नहीं करना चाहिये ॥ १३ ॥

जे धम्मिया ते खलु सेवियव्वा,
जे पंडिया ते खलु पुच्छियव्वा ।

जे साहुणो ते अभिनंदियव्वा,
जे निम्ममा ते पडिलाभियव्वा ॥१४॥

जो धर्मवन्त हो उन्हें निश्चय ही सेवन करना चाहिये, जो पण्डित हो उन्हें ही पूछने योग्य पूछना चाहिये, जो साधु पुरुष हो उन्हीं की स्तुति करना चाहिये और जो निर्मोही हो उन्हें ही आहार आदि का दान देना चाहिये।

पुत्ता य सीसा य समं विभत्ता,
रिसी य देवा य समं विभत्ता।
मुक्खा तिरिक्खा य समं विभत्ता,
मुआ दरिद्दा य समं विभत्ता ॥१५॥

श्रेष्ठ पुरुषों ने सुपुत्र तथा सुशिष्य दोनों ही समान माने हैं, ऋषिओं तथा देवों को समान कहा है। मूर्ख और तिर्यञ्च दोनों ही समान गिने गये हैं। मृत तथा दरिद्री दोनों ही समान गिने गये हैं॥ १५ ॥

सव्वा कला धम्म कला जिणाइ,
सव्वा कहा धम्म कहा जिणाइ।

सव्वं बलं धम्मबलं जिणाइ,
सव्वं सुहं धम्म सुहं जिणाइ ॥१६॥

सर्व कलाओं को एक धर्म कला जीत जाती है। कथाओं में धर्म कथा सर्वश्रेष्ठ है। सर्व बलों में एक धर्म बल श्रेष्ठ है, सर्व सुखों में धर्म का सुख सर्व सुख श्रेष्ठ है। अर्थात् धर्म सर्व विषयों में जयवन्त है ॥ १६ ॥

जूए पसत्तस्स धणस्स नासो,
मंसे पसत्तस्स दयाइ नासो।
मज्जे पसत्तस्स जसस्स नासो,
वेसा पसत्तस्स कुलस्स नासो ॥१७॥

जुगार या सटोरियों का धन अवश्य ही नष्ट होने वाला होता है, मांस में आसक्त व्यक्ति दयाहीन होता है, मदिरा आसक्त व्यक्ति का यश नष्ट होता है, तथा वैश्या में जो आसक्त होता है उसके कुलका नाश होता है ॥ १७ ॥

हिंसा पसत्तस्स सुधम्म नासो,
चोरी पसत्तस्स सरीर नासो।
तहा परत्थिसु पसत्तयस्स,
सव्वस्स नासो अहमा गई य ॥१८॥

जीव हिंसा में आसक्त हो तो उत्तम धर्म का नाश होता है। चोरी में आसक्त होने पर शरीर का नाश होता है। परस्त्री में आसक्त होने पर सर्व गुणों का नाश होता है। इतना ही नहीं वह मर कर भी अधम गति में जाता है ॥ १८ ॥

दाणं दरिद्दस्स पहुस्स खंति,
इच्छा निरोहो य सुहोइयस्स।
तारुणए इंदिय निग्गहो य,
चत्तारि एआणि सुदुक्कराणि ॥१९॥

दरिद्र अवस्था में दान देना अति दुष्कर होता है। सत्ता प्राप्ति होने पर क्षमावान् होना मुश्किल है, सुखोचित प्राणी को इच्छाओं का रोकना दुष्कर तथा तारुण्यावस्था में इन्द्रियों का रोकना, निग्रह करना मुश्किल होता है। ये चारों अति दुष्कर कार्य जानना चाहिये ॥ १९ ॥

असासियं जीवियमाहु लोए,
धम्मं चरे साहु जिणोवइट्ठं।
धम्मो य ताणं सरणं गई य,
धम्मं निसेवित्तु सुहं लहंति ॥२०॥

संसार में जीवितव्य को अशाश्वत् कहा गया है। अतः हे भव्यो ! जिनेश्वर उपदेश का अनुपालन करना चाहिये, क्योंकि धर्म ही त्राण, शरण तथा श्रेष्ठ गति को देने वाला होता है। ऐसे धर्म को जो प्राणी सेवन करता है निश्चय ही उसे शाश्वत् गति प्राप्त होती है।

नोट—इस कुलक के मूल रचयिता प्राचीन गौतम मुनि है। ऐसा आरम्भ में बताया गया है।

इस कुलक पर खरतरगच्छाचार्य जिन हंससूरि शिष्य श्री पुण्यसागर उपाध्याय के शिष्य उ० पद्मराज गणि के शिष्य श्री ज्ञानतिलक गणि ने वि० सं० १६६० में वृत्ति की रचना की थी, ६६ कथाओं द्वारा विषय सुबोध बनाया गया है।

।। इति श्री गौतम कुलकस्य हिन्दी सरलार्थः समाप्तः ।।

卐

[१२]

।। श्री आत्मावबोध कुलकम् ।।

धम्मप्पहरमणिज्जे,
पणमित्तु जिणे महिंद नमणिज्जे ।
अप्पावबोहकुलयं,
वुच्छं भवदुक्ख कयपलयं ।। १ ।।

धर्म की प्रभा से रमणीय और महेन्द्रों द्वारा नमनीय श्री जिनेन्द्रों को प्रणाम करके भव दुःख को नष्ट करने वाला आत्मावबोध (अनुभव) कारक कुलक का वर्णन करूंगा ।।१।।

अत्तावगमो नज्जइ,
सयमेव गुणेहिं किं बहु भणासि ?
सूरुदओ लक्खिज्जई,
पहाइ न उ सवहनिवहेणं ।। २ ।।

जिस प्रकार सूर्योदय सूर्य की प्रभा से माना जाता है, तेजहीन सूर्य उदित नहीं होता उसी प्रकार आत्मबोध स्वयं आत्मगुणों के कारण ही जाना जा सकता है संख्याबन्ध सोगन खाने

से भी आत्मबोध होता नहीं, हे जीव ! अधिक क्यों प्रलाप करता है, क्यों स्व प्रशंसा करता है ॥ २ ॥

दमसम समत्त मित्ती,
संवेअ विवेअ तिव्वनिव्वेआ ।
ए ए पगूढ अप्पा-
वबोहबीअस्स अंकुरा ॥ ३ ॥

इन्द्रियों का दमन, मनोविकार का शमन, समभाव मैत्री, संवेग, विवेक और तीव्र निर्वेद ये गुप्त रहने वाले आत्मज्ञान रूप बीज के सब अंकुर हैं ॥ ३ ॥

जो जाणइ अप्पाणं,
अप्पाणं सो सुहाणं न हु कामी ।
पत्तम्मि कप्परुक्खे,
रुक्खे किं पत्थणा असणो ? ॥ ४ ॥

जो आत्मा को जानता है, वह (संयोग वियोग धर्मवाले संसार के) अल्प सुखों के कामी नहीं होता है, जिसे कल्पवृक्ष प्राप्त हो गया हो वह असन के वृक्ष की चाहना भी क्यों करेगा ॥ ४ ॥

निअविन्नाणे निरया,
निरयाइ दुहं लहंति न कया वि ।
जो होइ मग्ग लग्गो,
कहं सो निवडेइ कूवम्मि ? ॥ ५ ॥

आत्मविज्ञान में निरन्तर रक्त जीव कभी भी नरक तिर्यंच आदि दुःख कारक योनियों में जन्म धारण नहीं करते, कारण कि जो आत्मविज्ञान रूपी सीधे राजमार्ग पर चले तो संसार रूपी कूप में कैसे गिरेगा ? ॥ ५ ॥

तेसिं दूरे सिद्धी,
रिद्धी रणरणयकारणं तेसिं ।
तेसिम पुराणा आसा,
जेसिं अप्पा न विन्नाओ ॥ ६ ॥

जो आत्मा की पहचान नहीं कर सकता, उनसे सिद्धि दूर ही रहा करती है. लक्ष्मी भी उन्हें दुःख का कारण ही बनती है, तथा उनकी आशाएँ हमेशा अपूर्ण ही रहती है ।

ता दुत्तरो भवजलही,
ता दुज्जेओ महालओ मोहो ।

ता अइ विसमो लोहो,
जा जाओ न(नो) निओ बोहो ॥ ७ ॥

जहां तक ही भव सागर दुस्तर है तब तक कि महामोह नष्ट नहीं हुआ तथा तब तक ही लोभ रहता है जब तक आत्मज्ञान नहीं होता है ॥ ७ ॥

जेण सुरासुरनाहा,
हहा अणाहुव्व वाहिया सोवि ।
अज्झप्पझाण जलणे,
पयाइ पयंगत्तणं कामो ॥ ८ ॥

अरे ! जिन्होंने सुरेन्द्र तथा असुरेन्द्र सबको ही अनाथ की तरह वश में कर लिया है वह प्रबल काम भी अध्यात्म ध्यान रूप अग्नि में पतंगीया के समान जल कर भस्म हो जाता है ॥ ८ ॥

जं बद्धंपि न चिट्ठइ,
वारिज्जंतं वि(प)सरइ असेसे ।
झाणबलेणं तं पि हु,
सयमेव विलिज्जई चित्तं । ॥ ९ ॥

शुभ भावनाओं से भी बंधा हुआ मन स्थिर नहीं होता, अभिग्रहादि से रोका हुआ भी मन अस्थिर हो जाता है वही मन आत्मबोध से वश में आ जाता है तथा स्वयं ही शान्ति को प्राप्त हो जाता है ॥ ६ ॥

बहिरंतरंगभेया,
विविहावाही न दिंति तस्स दुहं ।
गुरुवयणाओ जेणं,
सुहझाणरसायणं पत्तं ॥१०॥

जिसने सद्‌गुरु वचनामृत का पान कर लिया है, आत्म ध्यान रूप रसायन का सेवन कर लिया है उसे बहिरंग रोगादि और अन्तरंग कामक्रोधादि विविध प्रकार की व्याधियां दुःख नहीं दे सकती ॥ १० ॥

जिअमप्पचिंतणपरं,
न कोइ पीडेइ अहव पीडेइ ।
ता तस्स नत्थि दुक्खं,
रिणमुक्खं मन्न माणस्स ॥११॥

जो जीव आत्मचिंतन में तत्पर रहा है, उसे कोई पीडा दुःख नहीं देती तथा यदि कोई पीडा दे तो भी दुःख नहीं

होता कारण कि पीडा देने से वह यह सोचता है कि 'मैं कर्ज से मुक्त हो रहा हूं' ऐसा मानता है ॥ ११ ॥

दुक्खाण खाणी खलु रागदोसा,
ते हुँति चित्तम्मि चलाचलम्मि ।
अज्झप्प जोगेण चएइ चित्तं,
चलत्तमालाणि अकुञ्जरुव्व । ॥१२॥

निश्चय ही दुःखों की खान राग-द्वेष है, तथा रागद्वेष की उत्पत्ति चित्त के चलायमान होने पर होती है, जैसे कील के बंधा हस्ति चलायमान नहीं होता वैसे ही, उसी प्रकार अध्यात्मयोग से भी मन चलायमान नहीं होता चपलता का त्याग कर देता है ॥ १२ ॥

एसो मित्तममित्तं,
एसो सग्गो तहेव नरओ अ ।
एसो राया रंको,
अप्पा तुट्ठो अतुट्ठो वा ॥१३॥

आत्मा स्वयं के गुणों से संतुष्ट है तो वह स्वयं का मित्र बन सकता है स्वयं स्वर्ग बन सकता है, स्वयं राजा

भी है, और यदि स्वयं से संतुष्ट नहीं है तो स्वयं ही स्वयं का शत्रु है तथा स्वयं ही नरक है स्वयं ही रंक है, अतः आत्मा की अधम तथा उत्तम स्थिति का स्वयं ही जुम्मेदार है ॥ १३ ॥

लद्धा सुरनररिद्धि,
विसया वि सया निसेविया णेण।
पुण संतोसेण विणा,
किं कत्थ वि निव्वुई जाया ॥१४॥

इस जीवने देवों की मनुष्यों की समृद्धि एवं ऋद्धि प्राप्त की तथा स्वर्ग में बार बार समस्त सुखों का सेवन किया किन्तु उसे किसी भी स्थान पर संतोष नहीं मिला, अतः संतोष ही शान्ति का मूल कारण है ॥ १४ ॥

जीव ! सयं चिअ निम्मिअ,
तणुधरमणी कुटुंब नेहेणं।
मेहे णिव दिणनाहो,
छाइज्जसि तेअवंतो वि ॥१५॥

जिस प्रकार तेजस्वी सूर्य भी मेघघटा से आच्छादित हो जाता है और निस्तेज बन जाता है। उसी प्रकार हे

मनुष्य तू भी ज्ञान प्रकाश में भले ही सूर्य के समान तेजस्वी है किन्तु स्त्री, धन, कुटुम्ब तथा शरीर इनके स्नेह से आच्छादित होने से तेरे ज्ञान का प्रकाश भी धूमिल पड गया है ॥ १५ ॥

जं वाहिवाल वेसा-
नराण तुह वेरिश्राण साहीणो ।
देहे तत्थ ममत्तं जिश्र !
कुणमाणो वि किं लहसि ? ॥१६॥

पुनः तुम्हारा यह शरीर व्याधि सर्प तथा अग्नि के समान विषयादि कषायों से ग्रसित है, शत्रुओं से आक्रान्त है अतः इस शरीर पर ममत्व करने से क्या फायदा ? ॥१६॥

वरभत्तपाणराहाण य-
सिंगारविलेवणेहिं पुट्टो वि ।
निश्र पहुश्रो विहडंतो,
सुणए ण वि न सरिसो देहो ॥१७॥

उत्तम भोजन, स्वादिष्ट पेय, स्नान शृङ्गार, विलेपन आदि से पुष्ट एवं सुन्दर शरीर भी अपने स्वामी को धोखा

दे जाता है श्वान के समान भी कृतज्ञ नहीं है, अतः इस का मोह करना छोड दो ॥१७॥

कट्ठाइ कडुअ बहुहा,
　　जं धणभावज्जिअं तए जीव !
कट्ठाइ तुज्भ दाउं,
　　तं अंते गहिअ मन्नेहिं　　॥१८॥

हे जीव ! बहुत प्रकार से ठंड, धूप, क्षुधा, तृषा तथा जंगलों का दुःसाध्य कष्ट सहन कर तूने धन का संग्रह किया उस धन ने भी तुझे मूर्च्छित कर दुःख ही दिया है। और तुम्हारे सामने ही अग्नि, चोर राजादि का धन चला गया वहां तेरा कोई वश नहीं चला ॥ १८ ॥

जह जह अन्नाणवसा,
　　धणधन्नपरिग्गहं बहु कुणसि ।
तह तह लहु निमज्जसि,
　　भवे भवे भारिअतरि व्व　　॥१९॥

हे जीव ! जैसे जैसे तू अज्ञान के वशीभूत होकर धन-धान्यादि परिग्रह करता है उसी प्रमाण से तेरी नैया अधिक

भारी होकर समुद्र में डूब जाती है, और संसार सागर में डूब जाती है ।। १९ ।।

जा सुविणे वि हु दिट्ठा,
हरेइ देहीण देह सव्वस्सं ।
सा नारी मारा इव,
चयसु तुह दुब्बलत्तेणं ।।२०।।

स्त्री जो स्वप्न में भी मनुष्य का सर्वस्व हरण कर लेती है, उस स्त्री को अपस्मार का रोग समझ कर उसका त्याग कर ।। २० ।।

अहिलससि चित्तसुद्धिं,
रज्जसि महिलासु अदह मूढत्तं ।
नीली मिलिए वत्थे,
धवलिमा किं चिरं ठाई ? ।।२१।।

हे चित्त ! तू मनशुद्धि की इच्छा भी करता है तथा स्त्रियों में आसक्त भी रहता है, कैसी मूर्खता है ? नील में रंगा हुआ वस्त्र कैसे शुभ्र रह सकता है विषयासक्त मन कैसे शुद्ध बन सकता है ? ।। २१ ।।

मोहेण भवे दुरिए,
बंधिअ खित्तोसि नेह निगडेहिं।
बंधव मिसेण मुक्का,
पाहरिआ तेसु को राओ ? ॥२२॥

मोहरूपी राजा ने तुमको स्नेह रूप बेडियों से बाँध कर संसार रूपी कारागृह में पटक रखा है, तथा माता, पिता, भाई, बन्धु, आदि रक्षक के बहाने कारावास से भाग न जाये इस हेतु चौकीदारी का काम करते हैं। फिर भी मूढ इन पहरेदारों में स्नेह क्यों रखता है? ॥२२॥

धम्मो जणओ करुणा,
माया माया विवेगनामेणं।
खंति पिया सुपुत्तो,
गुणो कुडुंबं इमं कुणसु ॥२३॥

धर्म ही तुम्हारा पिता, करुणा ही तुम्हारी माता विवेक ही तुम्हारा भाई, क्षमा ही तुम्हारी पत्नी तथा ज्ञान दर्शन तथा चारित्र्य ही तुम्हारे उत्तम पुत्र है। इस प्रकार तू तुम्हारा अन्तरंग कुटुम्ब बना ॥ २३ ॥

अइ पालिआहिं, पगइत्थिआहिं,
जं भामिआसि वंधेउं ।
संते वि पुरिसकारे,
न लज्जसे जीव ! तेणं वि ॥२४॥

हे जीव ! तुम्हारे में अनन्त बल होते हुए भी अति पालन की हुई कर्म प्रकृत्ति रूपी स्त्रियों के द्वारा तू बंध कर चारों गतिओं में परिभ्रमण कर रहा है, क्या इसकी लज्जा तूझे अभी तक नहीं आती ? ॥ २४ ॥

सयमेव कुणसि कम्मं,
तेण य वाहिज्जसि तुमं चेव ।
रे जीव ! अप्पवेरिअ !
अन्नस्स य देसि किं दोसं ॥२५॥

हे जीव ! स्वयं की आत्मा का शत्रु तू स्वयं कर्म उपार्जन करके बन रहा हैं । उसी के कारण चारों गतिओं में भ्रमण कर रहा है । फिर भी 'अमुक व्यक्ति ने मेरा बुरा किया' यह दोष पर को देता है, जबकि तू स्वयं इसका जुम्मेदार है ॥ २५ ॥

तं कुणसि तं च जंपसि,
　　तं चिंतसि जेण पडसि वसणोहे ।
एयं सगिहरहस्सं,
　　न सक्किमो कहिउमन्नस्स　　　॥२६॥

हे आत्मन् ! तू कार्य, शब्द तथा विचारों के कारण स्वयं ही दुःख के समुद्र में गिरता हैं तथा अन्तरंग भेद तू स्वयं बहिरंग प्रगट करके स्वयं की प्रतिष्ठा गिरा रहा है ।

पंचिदियपरा चोरा,
　　मणजुवरन्नो मिलित्तु पावस्स ।
नियनियअत्थे निरत्ता,
　　मूलट्ठिइ तुज्झ लुंपंति　　　॥२७॥

हे आत्मन् ! अपने अपने स्वार्थ में आसक्त पांचों इन्द्रियों रूप महान् डाकू पापी मनरूपी युवराज के साथ मिलकर तुम्हारे ज्ञान, दर्शन तथा चारित्र रूप धन का हरण कर रहे हैं । आत्मगुण की चोरी हो रही है तू भूला कैसे बैठा है ॥ २७ ॥

हणिओ विवेगमंती,
　　भिन्नं चउरंगधम्मचक्कंपि ।

मुट्ठं नाणाइधणं,
तुमं पि छूढो कुगइ कूवे ॥२८॥

इन्होंने तुम्हारे विवेक रूपी मन्त्री की हत्या कर दी है। तुम्हारी चतुरंगिणी (मनुष्य जन्म, धर्म श्रवण, श्रद्धा तथा संयमादि) को भी नष्ट कर दिया है। धर्मचक्र को भी भेदित कर दिया है। ज्ञान रूप रत्नों की चोरी कर ली है, और तुम्ही को दुर्गतिरूपी कूप में डाल दिया है ॥२८॥

इत्ति यकालं हुंतो,
पमाय निद्दाइ गलिय चेअन्नो।
जइ जग्गिओसि संपइ,
गुरुवयणा ता न वेएसि ? ॥२९॥

इतने समय तक तू प्रमाद रूपी निद्रा से गलित चेतना वाला रहा किन्तु अब तो तू सद्गुरु वचनों से जाग गया है फिर भी तू अपना स्वरूप क्यों नहीं पहचानता ? ॥ २६ ॥

लोगपमाणोसि तुमं,
नाण मओऽणं तवीरियोसि तुमं।
नियरज्जठिइं चिंतसु,
धम्मज्झाणासणासीणो ॥३०॥

तू लोक प्रमाण वाला है, ज्ञानमय है, अनन्त वीर्यवान है, अतः धर्म ध्यान रूपी आसन पर बैठकर आत्म साम्रज्य का विचार कर ॥ ३० ॥

को व मणो जुवराया,
    को वा रायाइ रज्जपब्भंसे ।
जइ जग्गिओसि संपइ,
    परमेसर ! पविस चेअन्नो (चेअन्नं) ॥३१॥

तू अभी जाग गया है । अतः देख, तुम्हारे सामने वह अवमानित मनरूपी युवराज तथा चोररूपी राजा कौन है जो तेरी राज्यश्री को समाप्त करने जा रहा है, स्वयं की चेतना में प्रवेश कर, अपना स्वरूप देख । क्योंकि तू स्वयं परमेश्वर सर्वशक्तिमान आत्मा से है ॥३१॥

नाणमओ वि जडो वि,
    पहू वि चोरुव्व जत्थ जाओ सि ।
भवदुग्गम्मि किं तत्थ,
    वससि साहीणसिवनयरे ॥३२॥

ज्ञान के रहते हुए भी तू जड जैसा हो गया है, स्वामी के रहते भी तू चोर के समान डर वाला हो गया है । मोक्ष नगर तेरे अधीन रहते हुए भी तू संसार कारावास में कैद हो गया है ऐसा क्यों ? सोच ॥ ३२ ॥

जत्थ कसाया चोरा,
महावया सावया सया घोरा ।
रोगा दुट्ठभुअंगा,
आसासरिआ घणतरंगा ॥३३॥

भव रूपी दुर्गम दुर्ग कैसा है ? जहां चार कषाय चोर के समान स्थित है । जहां आपत्ति रूपी श्वापद निवास करते हैं जहां रोग रूपी सर्प निवास करते हैं । तथा विकल्प रूपी आशानदी हमेशा बहती है ॥ ३३ ॥

चिंताडवी सकट्ठा,
बहुलतमा सुंदरी दरी दिट्ठा ।
खाणी गई अणेगा,
सिहराइं अट्ठमयभेआ ॥३४॥

जहां चिन्ता रूपी काष्ठ युक्त अटवी चारों ओर खडी है । जहां महान अन्धकार वाली गुफा में अज्ञान रूपी स्त्री निवास करती है । चार गति रूप खाइयां है, आठ मद रूपी शिखर हैं ॥ ३४ ॥

रयणिअरो मिच्छत्तं,
मणदुक्कडओ सिला ममत्तं च ।

तं मिंदसु भवसेलं,
झाणासणिणा जिअ ! सहेल्लं ॥३५॥

जहां मिथ्यात्व रूपी राक्षस रहता है, जहां पर्वत के समान दृढ मन रहता है, ममत्व रूपी शिलाएँ रहती है। संसार रूपी कठिन दुर्गम पर्वत को ध्यान रूपी वज्र से लीलामात्र में ही हे जीव ! तू भंग कर दे ॥ ३५ ॥

जत्थत्थि आयनाणं,
नाणं वियाण सिद्धि सुहयं तं।
सेसं बहुं वि अहियं,
जाणसु आजीविआ मित्तं ॥३६॥

सच्चा ज्ञान क्या है ? इस विषय में कहते हैं, जो विरतीधरों का ज्ञान है वही आत्मज्ञान सिद्धि सुख को देने वाला होता है, इसके अतिरिक्त बहुत पढ़ा हुआ पोथी का ज्ञान, मात्र आजीविका का साधन है। अतः कौन सा रास्ता लेना है यह तू स्वयं विवेक से निर्णय कर ॥ ३६ ॥

सुबहु अहिअं जह जह,
तह तह गव्वेण पूरिअं चित्तं।

हीअ अप्पबोहरहिअस्स,

ओसहाउट्ठिओ वाही ॥३७॥

जैसे जैसे ज्यादा पढ़े, मन अहंकार से भर गया। वास्तव में यदि पढने में आत्मबोध नहीं हुआ तो अधिक पढना कर्मरोग को मिटाने की औषधि के बदले गर्वरूपी रोग को दे गया ॥ ३७ ॥

अप्पाणमबोहंता,

परं णिबोहंति केइ तेवि जडा।

भण परियणम्मि छुहिए,

सत्तागारेण किं कज्जं ॥३८॥

स्वयं की आत्मा को बोध करने के बदले लोग परउपदेश ज्यादा करते हैं, वे वास्तव में मूर्ख है। तुम्हीं बताओ एक तरफ तुम्हारा परिवार भूखा है जब कि दूसरों के लिये दानशाला खोलने की समझदारी कहां तक उचित है? निश्चय से तो आत्मा को समझाना ही दूसरों को समझाना है ॥ ३८ ॥

बोहंति परं किंवा,

मुणंति कालं नरा पढंति सुअं।

ठाण मुअंति सया वि हु,
विणाऽऽय बोहं पुण न सिद्धी ॥३९॥

दूसरों को उपदेश दे, ज्योतिष से मरण तिथि तक का ज्ञान कर लें, सूत्रों का खूब पारायण करें, स्वस्थान भी सम्मान में सुरक्षित कर लें, फिर भी यदि आत्मज्ञान नहीं हुआ है तो ये सब व्यर्थ है सिद्धि नहीं है ॥ ३९ ॥

अवरो न निंदिअव्वो,
पसंसिअव्वो कया वि नहु अप्पा ।
समभावो कायव्वो,
बोहस्स रहस्स मिणमेव ॥४०॥

कभी भी पराई निंदा नहीं करनी चाहिये तथा स्वयं की प्रशंसा भी नहीं करनी चाहिये, तथा सम भाव रखना चाहिये । यही आत्मबोध का रहस्य है ॥ ४० ॥

परसक्खितं भंजसु,
रंजसु अप्पागमप्पणा चेव ।
वज्जसु विविह कहाओ,
जइ इच्छसि अप्पविन्नाणं ॥४१॥

यदि आत्मज्ञानी होना है तो दूसरे तुझे अच्छा या बुरा कहते हैं यह मोह छोड दें। बाहरी ढोंग छोड दे। आत्मा को आत्मा से ही प्रसन्न कर। तू स्वगुणों का उपार्जन कर आत्मा को प्रसन्न कर दूसरों की विकथाओं को छोड दे।

तं भणसु गणसु वायसु,
झायसु उवइससु आयरेसु जिआ।
खण मित्तमपि विअक्खण,
आयारामे रमसि जेण ॥४२॥

हे जीव! तू ऐसा ही पढ, ऐसा ही गुन, ऐसा ही वांच तथा ऐसा ही ध्यान कर, तथा आचरण कर जिससे हे विचक्षण! तू क्षण मात्र भी आत्मारूपी बाग में रमे—आत्मानन्दी हो जाये ॥ ४२ ॥

इय जाणिऊण तत्तं,
गुरुवइट्ठं परं कुण पयत्तं।
लहिऊण केवलसिरिं,
जेणं जय सेहरो होसि ॥४३॥

इस प्रकार से गुरु श्री के उपदेशों का ज्ञान प्राप्त कर उसमें रमण करने का प्रयत्न कर। जिससे केवलज्ञान प्राप्त हो जावे। तथा जयशेखर (आठ कर्मों का क्षय करने वाला) बन सकें।

इस कुलक में कुलक कर्ता 'जयशेखर' नाम सूचित किया गया है ॥४३॥

॥ इति श्री आत्मावबोध कुलकस्य हिन्दी सरलार्थः समाप्तः ॥

[१३]

।। जीवानुशास्ति कुलकम् ।।

रे जीव ! किं न बुज्झसि,
चउगइसंसारसायरे घोरे ।
भमिओ अणंत कालं,
अरहट्टघडिव्व जलमज्झे ।। १ ।।

हे जीव ! चार गति रूप भयंकर संसार समुद्र में पानी में रहट के घडाओं के समान भ्रमण करता हुआ तू अनंत काल तक भ्रमण जीवायोनि में करता रहा । अभी भी तू क्यों मूर्छित है बोध पामता नहीं है ।।१।।

रे जीव ! चिंतसु तुमं,
निमित्तमित्तं परो हवइ तुज्झ ।
असुह परिणाम जणियं,
फलमेयं पुव्वकम्माणं ।। २ ।।

हे जीव ! तेरे भव भ्रमण में दूसरे तो निमित्त मात्र हैं वास्तव में भ्रमण में अशुभ परिणाम का जुम्मेदार तो तू ही स्वयं है ।। २ ।।

रे जीव ! कम्मभरियं,
उवएसं कुणसि मूढ ! विवरिग्रं ।
दुग्गइ गमणमणाणं,
एस च्चिय हियइ(हवइ) परिणामो ॥ ३ ॥

हे मूढ जीव ! तू पाप कर्म से भरे विपरीत उपदेश कर रहा है । दुर्गति में जाने वालों के मन में ऐसे ही दुष्परिणाम उत्पन्न होते हैं और यह भावी दुर्गति का सूचक है ॥३॥

रे जीव ! तुमं सीसे,
सवणा दाऊण सुणसु मह वयणं ।
जं सुक्खं न वि पाविसि,
ता धम्मविवज्जिग्रो नूणं ॥ ४ ॥

हे जीव ! तू कान खोल कर मेरा वचन सुन ! तू जो सुख को प्राप्त नहीं कर रहा है इसका तात्पर्य ही यह है कि तू धर्म रहित है । धर्म नहीं तो सुख भी नहीं ॥ ४ ॥

रे जीव ! मा विसायं,
जाहि तुमं पिच्छिऊण पर रिद्धी ।
धम्मरहियाण कुत्तो ?,
संपज्जइ विविहसंपत्ती ॥ ५ ॥

हे जीव ! दूसरों की समृद्धि देखकर तू विषाद मत करना। बिना धर्म के जीव को विविध प्रकार की सम्पत्तियां कहां से मिले ? ॥ ५ ॥

रे जीव ! किं न पिच्छसि ?,
झिज्झंतं जुव्वणं धणं जीअं।
तहवि हु सिग्घं न कुणसि,
अप्पहियं पवरजिणधम्मं ॥ ६ ॥

हे जीव ! तू नाशवान यौवन, धन और जीवन को क्यों देखता और सोचकर समझकर आत्महितकारी श्रेष्ठ जिनधर्म का सेवन क्यों नहीं करता ? ॥ ६ ॥

रे जीव ! माणवज्जिअ,
साहस परिहीण दीण गयलज्ज।
अच्छसि किं वीसत्थो,
न हु धम्मे आयरं कुणसि ॥ ७ ॥

हे जीव ! इतना अपमान सहन करता हुआ भी तू हे सत्त्वहीन ! हे निर्लज्ज ! अभी तक विश्वास करके क्यों बैठा है तू धर्म में क्यों आदर नहीं करता ॥ ७ ॥

रे जीव ! मणुयजम्मं,
अकयत्थं जुव्वणं च वोलीणं ।
न य चिण्णं उग्गतवं,
न य लच्छी माणिआ पवरा ॥ ८ ॥

हे जीव ! तेरा मनुष्य जन्म निष्फल गया और यौवन व्यतीत हो गया, तूने उग्र तप भी नहीं किया तथा उत्तम प्रकार की लक्ष्मी का भोग भी नहीं किया ॥ ८ ॥

रे जीव ! किं न कालो,
तुज्झ गओ परमुहं नीयंतस्स ।
जं इच्छियं न पत्तं,
तं असिधारावयं चरसु ॥ ९ ॥

हे जीव ! पराई आशाओं को ताकते हुए क्या तुम्हारा सम्पूर्ण जीवन व्यर्थ नहीं गया ? और देख ! तुझे कुछ भी नहीं मिलने वाला । अतः असिधारा के समान यह व्रत ग्रहण कर ।।इससे निश्चय ही कर्मबन्धन कट जायेंगे ॥ ९ ॥

इयमा मुणसु मणेणं,
तुज्झ सिरी जा परस्स आइत्ता ।

ता आयरेण गिण्हसु,
संगोवय विविह पयत्तेण ॥१०॥

तुम्हारी लक्ष्मी परायों के अधीन है ऐसा मानना भूल है आत्मगुणों की लक्ष्मी ग्रहण कर तथा त्रिविध प्रयत्नों से उसका रक्षण कर ॥१०॥

जीविअं मरणेण समं,
उप्पज्जइ जुव्वणं सह जराए।
रिद्धी विणास सहिआ,
हरिसविसाओ न कायव्वो ॥११॥

हे जीव ! जीवन मृत्यु के साथ, यौवन जरा-बूढापे के साथ और ऋद्धिआं विनाश के साथ उत्पन्न होते हैं। अर्थात् जीवन के पश्चात् मृत्यु युवावस्था के साथ वृद्धावस्था तथा समृद्धि के पश्चात् विनाश होने ही वाला है। अतः हर्ष और शोक से विरक्त रहो ॥ ११ ॥

॥ इति श्री जीवानुशास्ति कुलकस्य हिन्दी सरलार्थः समाप्तः ॥

卐 卐

[१४]

।। इन्द्रियादि विकारनिरोधकुलकम् ।।

रज्जाइभोगतिसिया,
अट्टवसट्टा पडंति तिरिएसु ।
जाईमएण मत्ता,
किमिजाइं चेव पावंति ॥१॥

राज्यादि भोगों की तृष्णा वाले आर्तध्यान से वशीभूत होकर तिर्यश्च में पडते हैं, तथा जातिमद से मदोन्मत्त हुए कृमि की जाति में जन्म लेते हैं ।। १ ।।

कुलमत्ति सियालित्ते,
उट्टाईजोणि जंति रूवमए ।
बलमत्ते वि पयंगा,
बुद्धिमए कुक्कडा हुंति ॥२॥

कुल मद करने वाले शृङ्गाल योनि में तथा रूप का मद करने वाले ऊँटादि की योनि में जन्म लेते हैं । बल का मद करने वाले पतंग तथा बुद्धिमद वाले मुर्गे बनते हैं ॥२॥

रिद्धिमए साणाइ,
सोहग्गमएण सप्पकागाई ।
नाणमएण बइल्ला,
हवंति मय अट्ठ अइदुट्ठा ॥३॥

ऋद्धि मद से श्वान, सौभाग्य मद से सर्प--कौआ और ज्ञान मद से बैल योनि में जन्म धारण करना पडता है, इस प्रकार आठों प्रकार के मद अत्यन्त दुष्ट है ॥ ४ ॥

कोहणसीला सीही,
मायावी बगत्तणंमि वच्चंति ।
लोहिल्ल मूसगत्ते,
एवं कसाएहिं भमडंति ॥४॥

क्रोधी व्यक्ति अग्नि में उत्पन्न होता है । मायावी बगुले की योनि में उत्पन्न होता है । लोभी चूहे की योनि में उत्पन्न होता है । इस प्रकार से कषायों द्वारा जीवों को दुर्गति में भ्रमण करना पड़ता है ॥ ४ ॥

माणसदंडेणं पुण,
तंडुलमच्छा हवंति मणदुट्ठा ।
सुयतित्तरलावाई,
होउ वायाइ बज्झंति ॥५॥

मन दण्ड से दुष्ट मन वाले तंडुलिया मत्स्य योनि में जन्म धारण करते हैं । वचन दण्ड से शुक, तीतर और लावरादि पत्तीओं होकर बन्धन में पडते हैं ॥ ५ ॥

काएण महामच्छा,
मंजारा(उ) हवंति तह कूरा ।
तं तं कुणंति कम्मं,
जेण पुणो जंति नरएसु ॥६॥

काय दण्ड द्वारा मनुष्य क्रूर मत्स्य की योनि में तथा बिल्ली की योनि में जन्म धारण करता है । तथा भव भव में मन वचन काया से वही कर्म करता हुआ मर कर नरक में जन्मता है ॥ ६ ॥

फासिंदियदोसेणं,
वणसुयरत्तम्मि जंति जीवा वि ।

जीहा लोलुप वग्घा,
घाणवसा सप्पजाईसु ॥७॥

स्पर्शेन्द्रिय दोष से जीव वन में वनचर झुण्ड की योनि में जन्म धारण करता है, रसनेन्द्रिय दोष से लोलुप जीव व्याघ्र मांसाहारी होकर जन्मता है, घ्राणेन्द्रिय दोष से सर्प जाति में जन्म धारण करता है ॥ ७ ॥

नयणिंदिए पयंगा,
हंति मया पुण सवणदोसेणं ।
ए ए पंच वि निहणं,
वयंति पंचिंदिएहिं पुणो ॥८॥

चक्षु इन्द्रिय दोष से पतंगिया तथा श्रोत्रेन्द्रिय दोष से मृग योनि में जन्म लेता है, तथा पांचों प्रकार के जीव दूसरे भवों में भी वे पांचों इन्द्रियों के द्वारा पुनः नष्ट होकर नरक में जन्म धारण करते हैं ॥ ८ ॥

जत्थ य विसय विराओ,
कसायचाओ गुणेसु अणुराओ ।

किरिआसु अप्पमाओ,
सो धम्मो सिवसुहो लोए ॥६॥

हे जीव ! जिस धर्म में विषयों का विराग, कषायों का त्याग, गुणों में प्रीति तथा क्रियाओं में अप्रमाद होता है वही धर्म विश्व में मोक्षसुख देने वाला है ॥ ६ ॥

॥ इति श्री इन्द्रियादि विकार निरोध कुलकस्य
हिन्दी सरलार्थः समाप्तः ॥

[१५]

।। अथ कर्म कुलकम् ।।

ते लुक्कि्कक्कस्स मल्लस्स, महावीरस्स दारुणा ।
उवसग्गा कहं हुंता ?, न हुंतं, जइ कम्मयं ।।१।।

तीनों लोक में अद्वितीयमल्ल के समान श्री महावीर प्रभु को भी उपसर्गो भयंकर हुए इसलिये कर्म न होता तो यह सब क्यों होता ? ।। १ ।।

वीरस्स मेढियग्गामे, केवलिस्सावि दारूणो ।
अइसारो कहं हुंतो ?, न हुंतं जइ कम्मयं ।।२।।

जो कर्म न होता तो श्री महावीरस्वामी केवलज्ञानी थे उनको मेढिक गांव में भयंकर अतिसार क्यों हुआ ? ।।२।।

वीरस्स अट्ठिअग्गामे, जक्खाओ सूल पाणिणो ।
वेअणाओ कहं हुंती ?. न हुंतं जइ कम्मयं ।।३।।

यदि कर्म का अस्तित्व न होता तो समर्थ वीर भगवान को अस्थिक ग्राम में शूलपाणी यक्ष से वेदनाएँ क्यों होंती ? ।।३।।

दारूणाश्रो सलागाश्रो, कन्नेसु वीर सामिणो ।
पक्खिवंतो कहं गोवो ? न हुंतं जइ कम्मयं ॥४॥

जो कर्म नहीं होता तो महावीर प्रभु के कानों में गोवाल के द्वारा भयंकर कीले क्यों ठोके जाते ? ॥ ४ ॥

वीसं वीरस्स उवसग्गा, जिणिंदस्सावि दारुणा ।
संगमाश्रो कहं हुंता, ? न हुंतं जइ कम्मयं ॥५॥

जो कर्म नहीं होता तो तीर्थङ्कर महावीर भगवान को भी संगमदेव से बीस उपसर्ग क्यों होते ? ॥ ५ ॥

गयसुकुमालस्स सीसंमि, खाइरंगार संचयं ।
पक्खिवंतो कहं भट्टो ? न हुंतं जइ कम्मयं ॥६॥

जो कर्म न होता तो गजसुकुमाल के मस्तक पर खेर के जलते अंगारे सोमिल विप्र क्यों रखता । पूर्वजन्म का कर्म दोष ही था तभी सोमिल से पुनः कष्ट प्राप्त हुआ ॥६॥

सीसाउ खंदगस्सावि ?, पीलिज्जंता तया कहं ।
जं तेण पालएणावि, न हुंतं जइ कम्मयं ॥७॥

खंधकसूरि के शिष्यों, पालक मन्त्री द्वारा यन्त्र में क्युं पीले गये ? यह सब कर्म बन्धन ही तो था। बिना कर्म बन्धनों के संभव कैसे हो सकता है ॥ ७ ॥

सणंकुमारपामुक्ख–चक्किणो वि सुसाहुणो।
वेयणाओ कहं हुंता ? न हुंतं जइ कम्मयं ॥८॥

सनत्कुमार चक्रवर्त्ति आदि उत्तम साधुओं को वेदना हुई यह सब कर्म नहीं होते तो क्या संभव है ? ॥ ८ ॥

कोसंबीए नियंठस्स, दारुणा अच्छिवेयणा।
घणिणो वि कहं हुंति ? न हुतं जइ कम्मयं ॥९॥

जो कर्म नहीं होते तो पूर्वावस्था में कौशम्बी नगरी में अति धनवान होने पर भी निर्गन्थ ऐसे अनाथीमुनि को नेत्र पीडा क्यों होती ? ॥ ९ ॥

नमिस्संतो महादाहो, नरिंदस्सावि दारूणो।
महिलाए कहं हुंतो, ? न हुंतं जइ कम्मयं ॥१०॥

नमिराजर्षि जैसे राजा को स्वयं की रानियों के कंकणों की आवाज भी सहन नहीं हुई। ऐसा महादाह हुआ यह सब कर्म के बिना अन्य क्या कारण हो सके ? ॥ १० ॥

अंधत्तं बंभदत्तस्स, सुदेहस्सावि दुस्सहं।
चक्किस्सावि कहं हुंतं?, न हुंति जइ कम्मयं ॥११॥

सुन्दर शरीर वाले ब्रह्मदत्त चक्रवर्त्ति को भी दुःसह अन्धत्व प्राप्त हुआ यह कर्म बिना अन्य क्या कारण हो सके? ॥११॥

नीयगुत्ते जिणिंदो वि, भूरिपुराणो वि भारहे।
उपज्जंतो कहं वीरो? न हुंतं जइ कम्मयं ॥१२॥

इस भरतक्षेत्र में महापुण्यशाली जिनेन्द्र श्रीमहावीर प्रभु भी नीच गोत्र में उत्पन्न हुए यह कर्म बिना क्या कारण हो सके? ॥ १२ ॥

अवंति सुकुमालो वि, उज्जेणीए महायसो।
कहं सिवाइ खज्जंतो? न हुंतं जइ कम्मयं ॥१३॥

उज्जयिनी नगरी में महान् यशवान अवन्ती सुकुमार (मुनि) को सियारनी द्वारा भक्षण किया जाना, कर्म के सिवाय और क्या हो सकता है ॥ १३ ॥

सईए सुद्धसीलाए, भत्तारा पंच पंडवा।
दीवईए कहं हुंता, न हुंति जइ कम्मयं ॥१४॥

पवित्र शील वाली सती द्रौपदी को पांच पाण्डवों की पत्नी होना पड़ा, यह कर्म बिना क्यों होवे ? ॥ १४ ॥

मियापुत्ताइजीवाणं, कुलीणाण वि तारिसं ।
महादुःक्खं कहं हुंतं ? न हुंतं जइ कम्मयं ॥१५॥

कुलीन मृगापुत्रादि जीवों को कई प्रकार का तीव्र दुःख प्राप्त हुआ वह उसी प्रकार के कर्मों का ही तो विपाक है ।

वसुदेवाईणं हिंडी, रायवंसोब्भवाण वि ।
तारुणे वि कहं हुंता ?, न हुंतं जइ कम्मयं ॥१६॥

यदि कर्मों का चक्कर नहीं होता तो राज्यकुल में जन्म धारण करने वाले तथा सुखभोग करने वाले वसुदेवादि को यौवन अवस्था में क्यों भटकना पडता ? ॥ १६ ॥

वासुदेवस्स पुत्तो वि, नेमिसीसो वि ढंढणो ।
अलाभिल्लो कहं हुंतो ?, न हुंतं जइ कम्मयं ॥१७॥

वासुदेव के पुत्र तथा श्री नेमिनाथ प्रभु के शिष्य होते हुए भी ढंढण ऋषि को छः मास तक आहार नहीं मिला वह सब कर्म का ही फल तो है ॥ १६ ॥

कराहस्स वासुदेवस्स, मरणं एगागिणो वणे ।
भाउयाओ कहं हुंतं ?, न हुंतं जइ कम्मयं ॥१८॥

जो कर्म नहीं होता तो श्रीकृष्ण का मरण एकाकी अवस्था में वन में स्वयं के बन्धु द्वारा क्यों होता ? ॥ १८ ॥

नावारुढस्स उवसग्गो, वद्धमाणस्स दारुणो ।
सुदाढाओ कहं हुंतो ?, न हुंतं जइ कम्मयं ॥१९॥

जो कर्म का फल नहीं भुगतना पडता होता तो श्रीवर्धमानस्वामी को सुदंष्ट्र यक्ष से भयंकर उपसर्ग क्यों होते ? ॥१९॥

पासनाहस्स उवसग्गो, गाढो तित्थंकरस्स वि ।
कमठाओ कहं हुंतो ?, न हुंतं जइ कम्मयं ॥२०॥

तीर्थङ्कर परमात्मा श्री पार्श्वनाथ भगवान को कमठ से क्रूर उपसर्ग सहन करना पडा है वह भी पूर्व कर्म परिपाक ही है, अतः कर्म को मानना ही पड़ेगा ॥ २० ॥

अणुत्तरा सुरा सायासुक्खसोहग्गलीलया ।
कहं पावंति चवणं ?, न हुंतं जइ कम्मयं ॥२१॥

अनुत्तर विमानवासी श्रेष्ठ देवो जो शातावेदनीय और सौभाग्य सुख की पूर्ण सामग्री युक्त होते हैं वे भी वहां से च्यव कर मृत्युलोक में आते हैं यह कर्म नहीं होता तो किस तरह बनता ? ॥ २१ ॥

॥ इति श्री कर्म कुलकस्य हिन्दी सरलार्थः समाप्तः ॥

卐卐
卐

[१६]

॥ दश श्रावक कुलकम् ॥

वाणियगाम पुरम्मि, आणंदो जो गिहवई आसी।
सिवनंदा से भज्जा, दस सहस्स गोउला चउरो ॥१॥

'वाणिज्य ग्राम' नगर में आनन्द नाम का गृहस्थ था, उसके शिवानन्दा नामकी स्त्री थी और दश दश हजार गायों के चार गोकुल थे ॥ १ ॥

निहि विवहार कलंतर ठाणेसुं कणाय कोडिबारसगं।
सो सिरिवीरजिणेसरपयमूले सावओ जाओ ॥२॥

उसके पास में भंडार तथा व्यापार में और ब्याज के धन्धे में चार चार करोड कमाये हुए कुल बारह करोड़ स्वर्ण सिक्के (मुद्राएँ) थी। वह श्री महावीर जिनेश्वर के चरण सेवी श्रावक थे ॥ २ ॥

चंपाई कामदेवो, भद्दाभज्जो सुसावओ जाओ।
छग्गोउल अट्ठारस, कंचणकोडीण जो सामी ॥३॥

चम्पापुरी में भद्रा नाम की स्त्री का पति कामदेव महावीरस्वामी का सुश्रावक हुआ। वह दश दश हजार गायों के छ गोकुल और अठारह करोड सोनैया का स्वामी था ॥३॥

कासीए चुलणी पिया,
सामा भज्जा य गोउला अट्ठ ।
चउवीस कणय कोडी,
सद्दाण सिरोमणी जाओ ॥४॥

काशी में श्रावकों में शिरोमणी 'चुलणी पिता' श्रावक प्रभु महावीर का भक्त हुआ था । उसके श्यामा स्त्री, आठ गोकुल, चौबीस कोटि स्वर्ण मुद्राएँ थी ॥ ४ ॥

कासीई सूरदेवो, धन्ना भज्जा य गोउला छच्च ।
कणयट्ठारस कोडी, गहीयवओ सावओ जाओ ॥५॥

काशी में सुरदेव नाम का गृहस्थ था, उसके धन्या नाम की पत्नी थी, छ गोकुल तथा अठारह कोटि स्वर्ण मुद्राओं का स्वामी था । व्रत ग्रहण कर वह श्री महावीरस्वामी भगवान का श्रावक हुआ था ॥ ५ ॥

आलंभिआनयरीए,
नामेणं चुल्ल सयगओ सड्ढो ।
बहुला नामेण पिया,
रिद्धी से कामदेवसमा ॥६॥

आलम्भिका नगरी में श्री महावीरस्वामी भगवान का चुल्लशतक नाम का श्रावक हुआ था। उसके बहुला नाम की पत्नी थी तथा उपर्युक्त कामदेव के समान धन सम्पत्ति का स्वामी था ॥६॥

कंपिल्ल पट्टणम्मि,
सद्दो नामेण कुंड कोलियओ।
पुस्सा पुण जस्स पिया,
विहवो सिरिकामदेवसमो ॥७॥

काम्पिल्यपुर में श्री महावीरस्वामी प्रभु का 'कुण्डकोलिक' नाम का श्रावक था उसके पुष्पा नाम की स्त्री थी तथा कामदेव के समान उपर्युक्त सम्पत्ति का स्वामी था ॥७॥

सद्दाल पुत्तनामो,
पोलासम्मि कुलाल जाईओ।
भज्जा य अग्गिमित्ता,
कंचण कोडीण से तिन्नि ॥८॥

पोलासपुर में 'सद्दाल पुत्र' नाम का कुम्भकार श्री महावीर का श्रावक हुआ, उसके अग्निमित्रा नाम की स्त्री थी तीन कोटि स्वर्ण मुद्राएँ थी ॥ ८ ॥

चउवीस कणयकोडी,
गोउल अट्ठेव रायगिहनयरे।
सयगो भज्जा तेरस,
रेवई अड सेस कोडीओ ॥९॥

राजगृही नगरी में शतक नाम का श्रावक श्री महावीर प्रभु का भक्त था, उसके चौबीस कोटि स्वर्ण मुद्राएँ, आठ गोकुल तथा रेवती नाम की पत्नी थी। अन्य बारह पत्नियां थी, रेवती आठ कोटि स्वर्ण मुद्राएँ लेकर तथा शेष एक एक कोटि स्वर्ण मुद्राएँ लेकर दहेज में आई थी ॥ ९ ॥

सावत्थी वत्थव्वो,
लंतग पिय सावगो य जो पवरो।
फग्गुणिनामकलत्तो,
जाओ आणंदसमविहवो ॥१०॥

श्रावस्ती नगरी में लान्तक प्रिय श्रेष्ठी रहता था, उसके फल्गुनी नाम की पत्नी थी वह वैभव में आनन्द श्रावक के समान था तथा प्रभु महावीर का परम श्रावक था ॥ १० ॥

सावत्थी नयरीए,
नदंणिपिय नाम सड्ढओ जाओ।
अस्सिणि नामा भज्जा,
आणंदसमो य रिद्धिए ॥११॥

श्रावस्ती नगरी में श्री महावीर प्रभु का नन्दिनी प्रिय नाम का श्रावक था, जिसके अश्विनी नाम की स्त्री थी और समृद्धि में आनन्द श्रावक के समान था ॥ ११ ॥

इक्कारस पडिमधरा,
सव्वे वि वीरपयकमल मत्ता।
सव्वे वि सम्मदिट्ठी,
बारस वय धारया सव्वे ॥१२॥

ये सब श्रावक ग्यारह प्रतिमा धारण करने वाले प्रभु श्री महावीरस्वामी के चरण कमल सेवी, सम्यग्दृष्टि और बारह व्रतधारी बने थे।

नोट–'उवासगदसाओ' सूत्र में भगवान के दसवे श्रावक का नाम 'सालिही पिया' आया हुआ है।

॥ इति श्री दशश्रावक कुलकस्य हिन्दी सरलार्थः समाप्तः ॥

[१७]

॥ अथ खामणा कुलकम् ॥

❖

जो कोइ मए जीवो,
चउगइसंसारभवकडिल्लंमि ।
दूहविओ मोहेणं,
तमहं खामेमि तिविहेणं ॥१॥

चारों गतिओं में मैंने परिभ्रमण रूप भवाटवि में भटकते हुए मोहवश किसी जीव को दुःखी किया हो तो त्रिविध त्रिविध (मन-वचन-काया से) खमाता हूँ ॥ १ ॥

नरएसु य उववन्नो,
सत्तसु पुढवीसु नारगो होउं ।
जो कोइ मए जीवो,
दूहविओ तं पि खामेमि ॥२॥

सात नरक पृथ्विओं में मैं जब जब नारकी के रूप में उत्पन्न हुआ वहां मैंने जिस किसी जीव को दुःख दिया हो उसे भी त्रिविध खमाता हूँ ॥ २ ॥

घायण चुन्नमाइ,
परोप्परं जं कयाइं दुक्खाइं।
कम्मवसएण नरए,
तं पि य तिविहेण खामेमि ॥३॥

कर्म के वशीभूत मैंने नरक में दूसरे नारकियों के साथ घात प्रतिघात दर्द, मारना आदि परस्पर वेदना रूप जो भी दुःख दिया हो उसके लिये मैं उनसे त्रिविध क्षमा मांगता हूँ-खमाता हूं ॥ ३ ॥

निद्दयपरमाहम्मिय-
रूवेणं बहुविहाइं दुक्खाइं।
जीवाणं जणियाइं,
मूढेणं तं पि खामेमि ॥४॥

निर्दय परमाधामीदेव रूप में उत्पन्न होकर मूढ रूप में मैंने नरक के जीवों को काटना कोल्हू में पीसना, अग्नि में जलाना, तप्त शीशा पिलाना, शकटि में जोतना, इत्यादि दुःख दिये हैं उन सबके लिये मैं उनसे क्षमा मांगता हूँ ॥ ४ ॥

हा ! हा ! तइया मूढो,
　　न याणिमो (हं) परस्स दुक्खाइं !
करवत्तय छेयण-भेयणेहिं,
　　केलीए जणियाइं ॥५॥

हा ! हा ! मैं मूढ पर दुःख के दर्द को अनुभव नहीं कर सका, मात्र कुतूहल के लिये दूसरों के प्राण हर लिये, उन्हें काट डाला, धन का हरण किया अपने धन के लोभ से ब्याज, रकम आदि लेकर उनकी गरीब अवस्था का ध्यान नहीं दिया जैसे तैसे अपना धन कमाने की कोशिश की, कई तरह से उन्हें दुःख दिये ॥ ५ ॥

जं किं पि मए तइया,
　　कलंकलीभाव मागएण कयं ।
दुक्खं नेरइयाणं,
　　तं पि य तिविहेण खामेमि ॥६॥

मैं नरक में उत्पन्न हुआ तब कलंकली भाव दुःख की अकुलाहट के वशीभूत होकर मैंने नारकीय प्राणियों को दुःख दिया हो उस दुष्कृत्य तथा उससे पीडित प्राणियों से मन वचन तथा काया से क्षमा चाहता हूँ ॥ ६ ॥

तिरियाणं चिय मज्झे,
पुढवीमाईसु खारभेएसु ।
अवरोप्परसत्थेणं,
विणासिया ते वि खामेमि ॥७॥

जब मैं तिर्यंच योनि 'खार मिष्ट' वर्णगन्ध रसस्पर्शादि भेद वाले पृथ्वी कायादि में जन्मा तब खारे पानी से मीठे पानी वाले जीवों को अर्थात् विरोधी प्रकृति वाले जीवों को परस्पर शस्त्र रूप में जिन जिन जीवों का नाश किया उन सबको मैं खमाता हूं क्षमा चाहता हूं ॥ ७ ॥

बेइंदियतेइंदिय-
चउरिंदिय माइणेगजाइसु ।
जे भक्खिय दुक्खविया,
ते वि य तिविहेण खामेमि ॥ ८ ॥

दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रियादि जातिओं में विविध योनियों में उत्पन्न हुआ, और जिन जिन जीवों का भक्षण किया उन सब को त्रिविध खमाता हूं ॥ ८ ॥

जलयरमज्झगएणं, अणेगमच्छाइरूवधारेणं ।
आहारट्ठा जीवा, विणासिया ते वि खामेमि ॥९॥

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च में जलचर रुप मत्स्य मच्छादि अनेक योनि मैंने जन्म धारण करके आहार के लिये मत्स्य न्याय से छोटे जीवों को नष्ट किया उन सबके लिये त्रिविध प्रकार से क्षमा चाहता हूं ॥ ९ ॥

छिन्ना भिन्ना य मए, बहुसो दुट्ठेण बहुविहा जीवा ।
जे जलमज्झगएणं, ते वि य तिविहेण खामेमि ॥१०॥

जलचर योनि में मैंने दुष्टता से बहुत जाति के जीवों को सताया नष्ट किया एवं भक्षण किया उन सबसे मैं त्रिविध प्रकार से क्षमा मांगता हूँ ॥ १० ॥

सप्पसरिसवमज्झे, वानरमज्जारसुणहसरहेसु ।
जे जीवा वेलविआ, दुक्खत्ता ते वि खामेमि ॥११॥

सर्प घो-नकुल तथा बन्दर, बिल्ली, श्वान और शरभ (अष्टापद) आदि जातिओं में उत्पन्न जिन जिन जीवों को सताया हो उन सबसे त्रिविध प्रकार से क्षमा मांगता हूं ॥ ११ ॥

सद्दूलसीहगंडय- जाइसुं, जीवघाय जणिश्रासुं ।
जे उववन्नेण मए, विणासिया ते वि खामेमि ॥१२॥

अन्य भी व्याघ्र, सिंह, गैंडा आदि जीवघातक मांसाहारी जातियों में उत्पन्न जीवों को मारा हो तो उन सबसे त्रिविध प्रकार से क्षमा मांगता हूँ ॥ १२ ॥

श्रोलावगिद्धकुक्कुड, हंसबगाईसुं सउणजाइसु ।
जे छुहवसेण खद्धा, किमि माइ ते वि खामेमि ॥१३

खेचर तिर्यञ्च योनि में, बाज, (श्येन) गिद्ध, कुक्कुट, हंसा, बकादि पक्षियों की योनि में उत्पन्न होकर मैंने भूख के कारण किसी जीव को नष्ट किया हो तो त्रिविध प्रकार से क्षमा मांगता हूँ ॥ १३ ॥

मणुएसु वि जे जीवा, जीब्भिदिय मोहिएण मूढेण ।
पारद्धिरमंतेणं, विणासिया ते वि खामेमि ॥१४॥

मनुष्य योनि में भी जिह्वा के वशीभूत मेरे शिकार हुए कोई जीव हो तथा यदि उन्हें सताया हो तो त्रिविध प्रकार से क्षमाता हूँ ॥ १४ ॥

फासगठिएण जे च्चिय, परदाराइसु गच्छमाणेणं ।
जे दूमिय दूहविश्रा, ते वि य खामेमि तिविहेणं ।।१५।।

स्पर्शेन्दिय का शिकार मैं जिसके द्वारा परदारा वैश्या कुमारी अदि में मैथुन सेवित करते समय जिनको संताप दिया हो अप्रीति उपजाई हो मारे हो, उन सब से मैं त्रिविध प्रकार से चमा मांगता हूं ।। १५ ।।

चक्खिदिय-घाणिंदिय, सोइंदियवसगएण जे जीवा ।
दुक्खंमि मए ठविया, ते हं खामेमि तिविहेणं ।।१६।।

चक्षु-घ्राण-श्रवणेन्द्रिय वश मैंने किसी जीव को दुःख दिया हो उन सबसे मैं त्रिविध प्रकार से चमा मांगता हूं ।

सामित्तं लहिउणं, जे बद्धा घाइया य मे जीवा ।
सवराह-निरवराहा, ते वि य तिविहेण खामेमि ।।१७

स्वामित्व के कारण राजा मन्त्री आदि के रूप में सत्ताधीश बनकर मैंने जो अपराधी या निरपराधी किसी जीवों को बन्धन से बांधे हो, केद किये हो, मारे हो या मराये हो उन सबसे त्रिविध प्रकार से चमा चाहता हूं ।।१७।।

अक्कमिउणं आणा, कारविया जे उ माण भंगेणं।
तामसभावगएणं, ते वि य तिविहेण खामेमि ॥१८॥

मेरे अभिमान के कारण मान भंग हुए मेरे मन से तामसवृत्ति के कारण यदि जीवों को संताप संत्रास दिया गया हो तो उन सबसे मैं त्रिविध प्रकार से क्षमा चाहता हूं ॥१८॥

अब्भक्खाणं जे मे, दिन्नं दुट्ठेण कस्सइ नरस्स।
रोसेण व लोभेण व तं पि य तिविहेण खामेमि ॥१९

दुष्टता या क्रोध से मैंने या लोभ से मैंने किसी मनुष्य पर झूठे कलंक चढाए हो तो त्रिविध प्रकार से क्षमा चाहता हूं ॥१९॥

परआवयाए हरिसो, पेसुन्नं जं कयं मए इहइं।
मच्छर भावठिएणं, तं पि य तिविहेण खामेमि ॥२०॥

मात्सर्य भाव से इस संसार में मैंने दूसरे की संपत्ति में शोक और विपत्ति में हर्ष किया हो तो उन सबके लिये त्रिविध प्रकार से क्षमा चाहता हूं ॥ २० ॥

रुद्दो खुद्दसहावो, जाओ णेगासु मिच्छ जाइसु।
धम्मो त्ति सुहो सद्दो, कन्नेहि वि तत्थ नो विसुहो॥२१

अनेक म्लेच्छ भवों में जहां जन्मा और धर्म जैसा कोई शब्द भी कानों से नहीं सुना ॥२१॥

परलोग निप्पिवासो, जीवाण सयाऽवि घायणापसत्तो।
जं जाओ दुहहेउ, जीवाणं तं पि खामेमि ॥२२॥

वह--म्लेच्छ भवों में परलोक के भयरहित जीवन करने वाला मैं हिंसा में सदैव प्रवृत्त रहा, और जीवों को कष्ट दिया उन सबसे त्रिविध क्षमा याचना करता हूं ॥ २२ ॥

आरियखित्ते वि मए, खट्टिगवागुरियडुम्बजाईसु।
जे वि हया जियसंघा, ते वि य तिविहेण खामेमि॥२३

आर्यक्षेत्र में उत्पन्न होने पर भी मैंने कसाई पारधि चण्डाल आदि जातियों में जन्म लिया कई जीवों को मारा इन सबके लिये उन जीवों से क्षमा याचना करता हूं ॥२३॥

मिच्छतमोहिएणं, जे वि हया के वि मंदबुद्धिए।
अहिगरणकारणेणं, वहाविआ ते वि खामेमि ॥२४

मिथ्यात्व से मूढ बन कर मन्द बुद्धि द्वारा मैंने परस्पर कलह कराकर यदि जीवों को सताया है उन सब से क्षमा याचना करता हूं ॥ २४ ॥

दवदाणपलीवणयं, काऊणं जे जीवा मए दड्ढा ।
सरदहतलायसोसे, जे वहिया ते वि खामेमि ॥२५॥

दावानल सुलगा कर जिन जिन जीवों को जला डाला तथा सरोवर तालाबों को सुखा कर मत्स्यादि का वध किया हो उन सबसे क्षमा याचना करता हूं ॥ २५ ॥

सुहदुल्लिएण मए, जे जीवा केइ भोगभूमिसु ।
अंतरदीवेसु वा, विणासिया ते वि खामेमि ॥२६॥

भोगभूमि यानि युगलिक क्षेत्रों में अन्तरद्वीपों में मनुष्य रूप में बना मैं यदि जीवों के प्रति निर्दय बना हूँ तो उन सबसे क्षमा याचना करता हूं ॥ २६ ॥

देवत्ते वि य पत्ते, केलिपओसेण लोहबुद्धीए ।
जे दूहविया सत्ता, ते वि य खामेमि सव्वे वि ॥२७॥

देवत्व में उत्पन्न होने पर मेरे द्वारा काम क्रीडारत होकर या प्रद्वेष से यदि किन्ही जीवों को सताया गया हो तो उनसे भी क्षमा याचना करता हूं ॥ २७ ॥

भवणवइणं मज्झे, आसुरभावम्मि वट्टमाणेणं ।
निद्दय हणणमणेणं, जे दूमिया ते वि खामेमि ॥२८॥

यदि भुवनपति निकाय में अत्यन्त कुपितभाव वश मैंने निर्दय और हिंसक मन से किसी प्राणी का मन दुखाया हो तो उन सबसे मैं क्षमा याचना करता हूँ ॥ २८ ॥

वंतररूवेणं मए, केली किल भावओ य जं दुक्खं ।
जीवाणं संजणियं, तं पि य तिविहेण खामेमि ॥२९॥

व्यन्तर देव रूप में क्रीडा प्रिय स्वभाव से मैंने अन्य जीवों को दुःख उपजाया हो तो उन सबसे क्षमा याचना करता हूं ॥ २९ ॥

जोइसिएसु गएणं, विसयामिसमोहिएण मूढेणं ।
जो कोवि कओ दुहिओ, पाणी मे तं पि खामेमि ॥३०

ज्योतिष्क देवत्व में प्राप्त विषयों की आसक्ति से मुझे मूढ बने मेरे द्वारा कोई जीव को दुःख दिया गया हो तो मैं उन सबसे क्षमा याचना करता हूं ॥ ३० ॥

पररिद्धिमच्छरेणं, लोहनिबुड्डेण मोहवसगेणं ।
अभिओगिएण दुक्खं, जाण कयं ते वि खामेमि ॥३१

देवगति में आभियोगिक देव बने मेरे द्वारा अन्य देवों की ऋद्धि में इर्षा मत्सर भाव से या मोह परवश होकर उन्हें दुःख दिया हो तो उन सबसे क्षमा याचना करता हूं ॥३१॥

इय चउगइमावन्ना, जे के वि य पाणिणो मए वहिया ।
दुक्खे वा संठविआ, ते खामेमो अहं सव्वे ॥३२॥

इस प्रकार चारों गतिओं में मेरे द्वारा परिभ्रमण करते हुए जिन जिन जीवों को मारा हो, दुःख दिया हो तो उन सबसे मैं क्षमा याचना करता हूं ॥३२॥

सव्वे खमंतु मज्झं, अहं पि तेसिं खामेमि सव्वेसिं ।
जे केणइ अवरद्धं, वेरं चइउण मज्झत्थो ॥३३॥

ये सारे जीव मुझे क्षमा करें, मैं भी उन्हें मेरे अपराध के लिये क्षमा करता हूँ । तथा वैरभाव छोड–मध्यस्थ भाव से क्षमा याचना करता हूँ ॥३३॥

नय कोइ मज्झ वेसो, सयणो वा एत्थ जीव लोगंमि ।
दंसणनाणसहावो, एक्को हं निम्ममो निच्चो ॥३४॥

इस जीव लोक में मेरा कोई शत्रु नहीं है । या मेरा कोई स्नेही-स्वजन नहीं है, मैं दर्शन ज्ञानमय स्वभाव वाला निर्मम और नित्य अकेला शाश्वत् रूप से ही हूँ ॥३४॥

जिण सिद्धा सरणं मे, साहू धम्मो य मंगलं परमं ।
जिण नवकारो परमो, कम्मक्खयकारणं होउ ॥३५॥

जिनेश्वर देवो, श्री सिद्ध भगवंत, साधु मुनिराज तथा जिन कथित धर्म इन चारों की शरण हूँ, ये चारों मेरे लिये परम मंगल हैं, पंचपरमेष्ठि नमस्कार महामन्त्र मेरे लिये कर्मक्षय का कारण बने ॥३५॥

इय खामणा उ एसा, चउगइ वावन्नयाण जीवाणं ।
भावविसुद्धीए महं, कम्मक्खयकारणं होउ ॥३६॥

इस प्रकार की हुई यह क्षमा याचना चारों गतिओं में भ्रमित जीवों को विशुद्धि का तथा कर्मक्षय का हेतु बने, या चारों गतिओं में रहे हुए जीवों के साथ भाव विशुद्धि पूर्वक की गई क्षमा याचना मेरे आत्मा के कर्मक्षय का कारण बने ॥ ३६ ॥

॥ इति श्री खामणा कुलकस्य हिन्दी सरलार्थः समाप्तः ॥

[१८]

।। अथ सारसमुच्चय कुलकम् ।।

नरनरवइ देवाणं,
जं सोक्खं सव्वमुत्तमं लोए ।
ते धम्मेण विढप्पइ,
तम्हा धम्मं सया कुणह ।। १ ।।

इस लोक में मनुष्य को, राजाओं को या देवों को जो सुख मिलता है वह सब धर्म के ही कारण मिलता है अतः हे भव्य जीवों ! सर्वदा धर्म की आराधना करो ।।१।।

उच्छुन्ना किं च जरा ?
नट्ठा रोगा य किं मयं मरणं ? ।
ठइयं च नरयदारं ?
जेण जणो कुणइ न य धम्मं ।। २ ।।

यदि जरा नष्ट हो गई है । रोग नष्ट हो गये है । मरण समाप्त हो गया है । नरक गति के द्वार बन्द हो गया है तो इसका एक मात्र कारण है धर्म रक्षक है । नहीं तो इन सबका भय धर्म के बिना बना रहता है ।।२ ।।

जाणइ जणो मरिज्जइ,
पेच्छइ लोओ मरंतयं अन्नं।
नय कोइ जए अमरो,
कह तह वि अणायरो धम्मे ? ॥३॥

जीव जानता है कि उन्हें मरना तो है ही, दूसरों को मरता हुआ देखता भी है, तथा संसार में कोई अमर रहा नहीं है, फिर भी धर्म का अनादर क्यों करता है ? ॥ ३ ॥

जो धम्मं कुणइ नरो,
पूइज्जइ सामिउ व्व लोएण।
दासो पेसो व्व जहा,
परिभूओ अत्थतल्लिच्छो ॥४॥

जो धर्म करता है वह उनमें स्वामी के समान पूजा जाता है। तथा जो एक मात्र अर्थ के पीछे ही तल्लीन है वह दास तथा नौकर के समान पराभव को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

इय जाणिऊण एयं,
वीमंसह अत्तणो पयत्तेण।

जो धम्माओ चुक्को,
सो चुक्को सव्वसुक्खाणं ॥५॥

यह समझकर हे जीव ! धर्म की कठिनता को सहन कर। कारण कि जो धर्म से च्युत होता है वह सर्व सुखों से वंचित होता है ॥ ५ ॥

धम्मं करेइ तुरियं,
धम्मेण य हुंति सव्व सुक्खाइं।
सो अभयपयाणेणं,
पंचिंदिय निग्गहेणं च ॥६॥

अतः हे जीव ! तू शीघ्र धर्म का आचरण कर, धर्म से ही सर्व सुखों को प्राप्त कर। और यह धर्म अभयदान देने से तथा पंचिन्द्रियों का निग्रह करने से ही प्राप्त होता है ॥६॥

मा कीरउ पाणिवहो,
मा जंपह मूढ ? अलियवयणाइं।
मा हरह परधणाइं,
मा परदारे मइं कुणइ ॥७॥

हे मूढ ! किसी जीव का वध मत कर, असत्य वचन मत बोल, परधन हरण मत कर, और परदारा को सेवन करने का विचार मत कर ॥ ७ ॥

धम्मो अत्थो कामो,
अन्ने जे एवमाइया भावा ।
हरइ हरंतो जीयं,
अभयं दिंतो नरो देइ ॥८॥

हे जीव ! यदि तू दूसरे जीव को मारता है तो उसके धर्म अर्थ तथा काम सब की हत्या करता है । यदि दूसरे जीव को अभयदान देता है तो उसके धर्म अर्थ तथा काम को अभयदान देता है । अतः हत्या से सर्वस्व हरण करता है, अभयदान से सर्वस्व अभयदान देता है ॥ ८ ॥

नय किंचि इहं लोए,
जीया हिंतो जीयाण दइययरं ।
तो अभयपयाणाओ,
न य अन्नं उत्तमं दाणं ॥९॥

इस संसार में जीवों को अपने जीवन से प्यारा अन्य कुछ भी नहीं हैं । अतः अभयदान से उत्तम अन्य कोई दूसरा दान नहीं है ॥ ९ ॥

सो दाया सो तवसो,
सो य सुही पंडिओ य सो चेव ।
जो सव्व सुक्खबीयं,
जीवदयं कुणइ खंतिं च ॥१०॥

वही दानी है, वही तपस्वी है। वही सुखी है तथा वही पण्डित है जो सर्व सुखों का बीज समान जीवदया तथा क्षमा धारण करता है, दया तथा क्षमा बिना दान तप और सुख एवं पाण्डित्य कुछ भी उपकार कर नहीं सकते ॥१०॥

किं पढिएण सुएण व,
वक्खाणिएण काइं किर तेण ।
जत्थ न नज्जइ एयं,
परस्स पीडा न कायव्वा ॥११॥

उस अध्ययन, श्रुत तथा व्याख्यान का क्या मूल्य है ? जिसमें 'परपीड़ा न करो' यह जानने को नहीं मिला अर्थात्-- दया बिना सब निष्फल है ॥११॥

जो पहरइ जीवाणं,
पहरइ सो अत्तणो सरीरंमि ।

अप्पाण वेरिओ सी,
दुक्खसहस्साण आभागी ॥१२॥

जो अन्य जीवों पर प्रहार करता है। वस्तुतः वह स्वयं पर ही प्रहार करता है, दूसरों को मारने वाला स्वयं की आत्मा का हंता ही है। क्योंकि दूसरों को मारने से स्वयं हजारों दुःखों का भागी बनता है ॥ १२ ॥

जं काणा खुज्जा वामणा य,
तह चेव रूवपरिहीणा।
उप्पज्जंति अहन्ना,
भोगेहिं विवज्जिया पुरिसा ॥१३॥

संसार में जो काणे, कुबड़े या वामन रूपहीन उत्पन्न होते हैं तथा दरिद्री पैदा होते हैं, तथा अन्य हजारों दुःखों को भोगने वाला बनता है वह जीव दया रहित होने का पाप फल ही है। तथा ये सब निर्दता के ही फल होते हैं॥१३॥

इय जं पाविंति य,
दुहसयाइं जणहियसोगजणयाइं।
तं जीवदयाए विणा,
पावाण वियंभियं एयं ॥१४॥

जो भी संसार में जीवों को शोक उत्पन्न करने वाले सैंकड़ों दुःखों की प्राप्ति होती है वह सब जीवदया हीन होने पर ही प्राप्त होता है पूर्व में किये हुए पापों का ही परिणाम है ।। १४ ।।

जं नाम किंचि दुक्खं,
नारतिरियाण तह य मणुयाणं ।
तं सव्वं पावेणं,
तम्हा पावं विवज्जेह ।।१५।।

नारकी तिर्यञ्च तथा मनुष्य जो भी दुःख प्राप्त करते हैं, वह सब पाप का ही कारण है । अतः पाप का त्याग करो ।।१५।।

सयणो धणो य तह,
परियणो य जो कुणइ सासया बुद्धी ।
अणुधावंति कुढेणं,
रोगा य जरा य मच्चू य ।।१६।।

स्वजन, परिवार तथा धन में यह शाश्वत् बुद्धि 'ये सब हमेशा रहेंगे' रखता है उसके पीछे रोग, जरा तथा मृत्यु उस प्रकार से पड़े रहते हैं जैसे चोर के पीछे सिपाही, आखिर उसे दबोच ही लेते हैं ।। १६ ।।

नरए जिय ! दुस्सह वेयणाउ,
पत्ताउ जाओ प(त)इं मूढ !
जइ ताओ सरसि इन्हि,
भत्तं पि न रुच्चए तुज्झ ॥१७॥

हे मूढ जीव ! जो दुःख तूने नरक में भुगते हैं उनको यदि याद करें तो भोजन भी नहीं कर सकता। अर्थात् भावी कर्म दुःखों की याद आज के जीवन को भी व्याकुल कर देती है ॥ १७ ॥

अच्छंतु तावनिरया,
जं दुक्खं गब्भवासमज्झंमि।
पत्तं तु वेयणिज्जं,
तं संपइ तुज्झ वीसरियं ॥१८॥

अरे ! नरक की बात तो छोड, इस जीवन में भी गर्भवास में जो तूने आशातावेदनीय दुःख भुगते हैं जो तू अब भूल गया है वे यदि याद करे तो फिर तू पाप करने का नाम भी छोड देगा ॥१८॥

भमिऊण भवग्गहणे,
दुक्खाणि य पाविऊण विविहाइं।

लब्भइ माणुसजम्मं,
अणेगभवकोडि दुल्लभं ॥१६॥

इस प्रकार संसार रूपी अटवी में भ्रमण करता हुआ जीव विविध जातियों में दुःखों को भोगता हुआ अनेक करोड़ों भवों के पश्चात् मनुष्य योनि में जन्म धारण करता है ॥१६॥

तत्थविय केइ गब्भे, मरंति बालत्तणंमि तारुन्ने ।
अन्ने पुण अंधलया, जावज्जीवं दुहं तेसिं ॥२०॥

उसमें भी कोई तो गर्भ में ही मर जाता है, कोई जन्म के पश्चात् बाल्यावस्था में ही नष्ट हो जाता है, कोई तारुण्य में तथा कोई जीवन भर अन्धा होता हुआ दुःख भोगता है ॥ २० ॥

अन्नेपुण कोढियया, खयवाहीसहियपंगुभूया य ।
दारिद्देणाभिभूया, परकम्मकरा नरा बहवे ॥२१॥

तो कोई कुष्ट रोगी, कोई क्षय रोगी, कोई पंगु, कोई दरिद्री तथा कोई जीवन भर गुलामी करता हुआ सड़ता रहता है । मनुष्य योनि में धर्म करने की क्षमता भी पुण्य से ही प्राप्त होती है ॥ २१ ॥

जे चेव जोणि लक्ख,
भमियव्वा पुण वि जीव ! संसारे ।
लहिऊण माणुसत्तं,
जं कुणसि न उज्जमं धम्मे ॥२२॥

इस प्रकार धर्म सामग्री प्राप्त करना अति दुर्लभ है। अतः मनुष्य भव में आने पर भी धर्म में उद्यम नहीं करें तो फिर हे जीव ! इसी संसार में चौरासी लाख जीवा योनि में परिभ्रमण तैयार है ॥ २२ ॥

इय जाव न चुक्कसि, एरिसस्स खणभंगुरस्स देहस्स।
जीवदयाउवउत्तो, तो कुण जिणदेसियं धम्मं ॥२३॥

अतः हे जीव ! जब तक इस क्षणभंगुर शरीर से तू मुक्त नहीं हुआ है तब तक जीवदया में उपयोगी बन कर जीवन को जिनभाषित धर्म में जिन भक्ति में अर्पित कर ॥२३॥

कम्मं दुक्खसरुवं, दुक्खाणुहवं च दुक्खहेउं च।
कम्मायत्तो जीवो, न सुक्खलेसं पि पाउणइ ॥२४॥

जीवन में कर्म दुःख स्वरूप है, भविष्य में दुःख उत्पन्न करने वाला ही है, ऐसे कर्म के आधीन हे जीव ! तू सुख की अनुभूति नहीं प्राप्त कर सकता है ॥ २४ ॥

जह वा एसो देहो,
वाहीहिं अहिट्ठिओ दुदं लहइ ।
तह कम्मवाहिघत्थो,
जीवो वि भवे दुहं लहइ ॥२५॥

जैसे व्याधि से ग्रसित शरीर कैसा दुःखी होता है वैसे ही कर्म के पाश में जीव भी दुःखी होता है ॥ २५ ॥

जायंति अपच्छाओ,
वाहिओ जहा अपच्छनिरयस्स ।
संभवइ कम्मवुड्ढी,
तह पावाऽपच्छनिरयस्स ॥२६॥

जैसे अपथ्य भोजन के सेवन से रोगी को रोग बढ जाता है उसी प्रकार अपथ्य रूपी पाप में निरत कर्म रोगी जीव को पाप भी कर्म रूपी रोग में वृद्धि करते हैं ॥ २६ ॥

अइगरुओ कम्मरिऊ,
कयाववयारो य नियसरीरत्थो ।
एस उविक्खिज्जंतो,
वाहि व्व विणासए अप्पं ॥२७॥

जिसने भयंकर अपकार किया है तुम्हारा ऐसा कर्म शत्रु अत्यन्त बलवान है। इसकी उपेक्षा करने से जैसे व्याधि शरीर को नष्ट करती है वैसे यह भी आत्मा का अहित करता है ॥ २७ ॥

माकुणह गयनिमोलं,
कम्मविघायंमि किं न उज्जमह।
लद्धूण मणुयजम्मं,
मा हारह अलियमोहहया ॥२८॥

हे जीव! कर्म को नष्ट करने में तू परिश्रम क्यों नहीं करता है, इसके साथ हाथी की तरह आंखमिचौनी मत खेल। मिथ्या मोह में भ्रमित तू उत्तम मनुष्य जन्म पाकर भी हार मत ॥२८॥

अच्चंत विवज्जासिय-
मइणो परमत्थदुक्खरूवेसु।
संसारसुहलवेसु,
मा कुणह खणं पि पडिबंधं ॥२९॥

आत्मा के स्वभाव से अत्यन्त उलटी बुद्धि वाले जीवों को परमार्थ से संसार के दुःखस्वरूप सुखों में क्षण भर भी प्रतिबन्धित मत कर ॥ २९ ॥

किं सुमिणदिट्ठपरमत्थ--
सुन्नवत्थुस्स करहु पडिबंधं ? ।
सव्वं पि खणिममेयं,
विहडिस्सइ पेच्छमाणाण ॥३०॥

परमार्थ से शून्य स्वप्नदृष्ट वस्तुओं का प्रतिबन्ध क्यों करता है, धन शरीरादि क्षणिक सुख है। देखते ही देखते नष्ट हो जाते हैं ॥ ३० ॥

संतंमि जिणुदिट्ठे, कम्मक्खयकारणे उवायंमि ।
अप्पायत्तंमि न किं, तद्दिट्ठभया समुज्जेह ॥३१॥

जिनोपदिष्ट कर्मक्षय उपाय आत्मा से कर सकता है फिर कर्मों का भय प्रत्यक्ष सामने दृष्टिगत है फिर भी तू उपाय को उपयोग में नहीं ले रहा है कितना मूढ है ?।३१।

जह रोगी कोइ नरो, अइदुसहवाहिवेयणा दुहिओ ।
तद् दुहनिव्विन्नमणो, रोगहरं वेज्जमन्निसइ ॥३२॥

जैसे कि अति दुःसह रोग की वेदना से दुःखी रोगी मनुष्य दुःख से परेशान होकर रोग को मिटाने वाले वैद्य को ढूंढता है वैसे ही तू भी प्रयत्न कर ॥ ३२ ॥

तो पडिवज्जइ किरियं,
सुवेज्ज भणियं विवज्जइ अपच्छं ।
तुच्छन्नपच्छभोइ,
इमी सुवसंतवाहिदुहो ॥३३॥

फिर वह उत्तम वैद्य की चिकित्सा को ग्रहण करता है, अपत्थ्य छोडता है, तथा तुच्छ सुपाच्यान्न पथ्य ग्रहण करता है तव रोग शनैः शनैः मन्द होता जाता है वैसे ही तू भी कर्म के रोग में भी पथ्य निग्रह का पालन कर ॥ ३३ ॥

ववगयरोगायंको,
संपत्ताऽऽरोग्गसोक्खसंतुट्ठो ।
बहु मन्नेइ सुवेज्जं,
अहिणं देइ वेज्ज किरियं च ॥३४॥

आखिर वह रोगी सम्पूर्ण शान्ति प्राप्त करता है तथा प्राप्त आरोग्य सुख से संतुष्ट होता है । इसके साथ ही उस वैद्य का बहुत सम्मान करता है । अपने आश्रित अन्य रोगियों को भी उस वैद्य से परामर्ष हेतु उपदेश देता है ॥३४॥

तह कम्मवाहिगहिओ,
जम्मणमरणाउइन्नबहुदुक्खो ।
तत्तो निव्विन्नमणो,
परमगुरुं तयणु अन्निसइ ॥३५॥

उसी प्रकार कर्म व्याधियों से ग्रस्त जन्म-मरण से दुःखी जीव भी उसके पश्चात् वीतरागदेव या उसके मार्ग को समझाने वाले सद्गुरुओं को खोजता है ॥ ३५ ॥

लद्धंमि गुरुंमि तओ,
तव्वयणविसेसकयअणुट्ठाणो ।
पडिवज्जइ पव्वज्जं,
पमायपरिवज्जणविसुद्धं ॥३६॥

इस प्रकार से श्रेष्ठ गुरुओं के प्राप्त होने पर उनके वचनों से सविशेष अनुष्ठान दानादि क्रियाओं से युक्त प्रमाद के परिहार पूर्वक अप्रमत्त दीक्षा को ग्रहण करता है ॥ ३६ ॥

नाणाविहतवनिरओ,
सुविसुद्धा सारभिक्खभोइ य ।

सव्वत्थ अप्पडिबद्धो,
सयणाइसु मुक्कवामोहो ॥३७॥

एवं अनेक बाह्याभ्यंतर तप में रक्त बयालीस दोषों से विशुद्ध असार भिक्षा का भोजन करता हुआ सर्वत्र अप्रतिबद्ध स्वजनादि से मोहमुक्त होकर—

एमाइ गुरुवइट्ठं,
अणुट्ठमाणो विसुद्धमुणिकिरियं ।
मुच्चइ निसंदिद्धं,
चिरसंचिय कम्मवाहीहिं ॥३८॥

गुरुपदिष्ट साधु क्रिया को आचरित करता हुआ, निश्चय ही चिरकाल से बंधित कर्म व्याधि से मुक्त बनता है । तथा कर्ममल से निर्मल बन मोक्ष को प्राप्त करता है ॥ ३८ ॥

॥ इति श्री सारसमुच्चय कुलकस्य हिन्दी सरलार्थः समाप्तः ॥

[१६]

॥ अथ इरियावहि कुलकम् ॥

नमवि सिरि वद्धमाणस्स पय पंकयं,
भवि अलि अजिअ भमरगण निच्च परिसेवियं ।
चउरगइ जीव जोणीण खामण कए,
भणिमुकुलयं अहं निसुणियं जह सुए ॥ १ ॥

भव्य जीवो रूपी भ्रमरों से सेवित श्री महावीर प्रभु के चरण कमलों को नमस्कार करके चार गतिमय जीवायोनियों से क्षमा मांगने हेतु जैसे मैंने सिद्धान्त में सुना है वैसा ही कहता हूं ॥ १ ॥

नारयाणं जिआ सत्तनरपुब्भवा,
अप जपज्जत्तभेएहिं जउदुसधुवा ।
पुढविअपतेयवाउवणस्सईणं तया,
पंच ते सुहुमथूला य दस हुंतया ॥२॥

सप्त नरक पृथ्विओं में उत्पन्न नरक जीवों के सात प्रकार है, उसके सात पर्याप्ता और सात अपर्याप्ता मिल कर कुल चौदह भेद होते है । तथा तिर्यञ्च में पृथ्वीकाय अप्पकाय,

तेउकाय, वाउकाय और साधारण वनस्पतिकाय इन पांच भेदों के पांच सूक्ष्म और पांच बादर दोनों मिल कर दस भेद होते हैं ॥ ३ ॥

अपजपज्जत्तभेएहिं वीसंभवे,
अपजपज्जत्तपत्तेयवणस्सइ दुवे ।
एव मेगिंदिआ वीस दो जुत्तया,
अपजपजबिदि तेइंदि चउरिंदिया ॥३॥

इन दश के अपर्याप्ता और पर्याप्ता इस प्रकार दो दो प्रकार गिनते हुए बीस भेद हुए, उपरांत प्रत्येक वनस्पति के अपर्याप्त तथा पर्याप्त दो भेद होते हैं । इस प्रकार एकिन्द्रिय के कुल बाइस भेद होते हैं । अतिरिक्त इसके पर्याप्ता तथा अपर्याप्ता, दोइन्द्रिय तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय मिलकर विकलेन्द्रिय के छः भेद हुए ॥ ३ ॥

नीर थल खेअरा उरग परिसप्पया,
भुजग परिसप्प सन्निऽसन्नि पंचिंदिया ।
दसवि ते पज्ज अपज्जत्त वीसं कया,
तिरिय सव्वेऽडयालीस भेया मया ॥४॥

पुनः संज्ञी पंचेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय इन प्रत्येक के जलचर, स्थलचर, खेचर, उरःपरिसर्प और भुजपरिसर्प इस प्रकार पांच पांच भेद होने से दस भेद होते हैं। इसके फिर पर्याप्ता और अपर्याप्ता गिनते हैं तो बीस भेद होते हैं, इस प्रकार सब मिलकर तिर्यञ्च के अडतालीस भेद होते हैं ।४।

पंचदस कम्मभूमी य सुविसालया,
तीस अकम्मभूमी य सुहकारया ।
तंतरद्दीव तह पवर छप्पराणयं,
मिलिय सय महिय मेगेण नटठायणं ॥५॥

सुविशाल पन्द्रह कर्म भूमिओं, सुखवाली तीस अकर्मभूमिओं, तथा छप्पन्न अंतरद्वीप इस प्रकार मनुष्य को उत्पन्न होने के कुल एक सौ एक स्थान है ॥ ५ ॥

तत्थ अपजत्तपज्जत्तनरगब्भया,
वंतपित्ताइ असन्नि अपजत्तया ।
मिलिय सव्वे वि तं तिसय तिउत्तरा,
मणुयजम्मम्मि इय हुंति विविहत्तरा ॥६॥

वहां पर पर्याप्ता तथा अपर्याप्त भेद से दो भेद वाले गर्भज मनुष्य होते हैं। उसके २०२ भेद और उनके वमन-

पित्तादि (चौदह स्थानों में) उत्पन्न होते हुए अपर्याप्त संमूर्छिम मनुष्यों का १०१ इस प्रकार मनुष्य जन्म में ३०३ भेद होते हैं ।। ५ ।।

भवणावइदेव दस पनर परम्मिया,
जंभगा दस य तह सोल वंतरगया ।
चर थिरा जोइसा चंद सूरा गहा,
तह य नक्खत्त तारा य दस भावहा ।।७।।

देवों में भवनपति देवों के दस, परमाधार्मिक के पन्द्रह, तिर्यग् जृंभक के दस तथा व्यन्तर के सोलह और चन्द्र, सूर्य, ग्रह नक्षत्र और तारा ये पांच चर और पांच स्थिर मिलकर कान्तिमान ज्योतिष के दस भेद होते हैं ।। ७ ।।

किब्बिसा तिरिण सुर बार वेमाणिया,
भेय नव नव य गंविज्ज लोगंतिया ।
पंच अणुत्तरा सुखस, ते जुया,
एगहीणं सयं देवदेवी जुआ ।।८।।

एवं किल्बिषी देव के तीन भेद, बारह भेद वैमानिक के, नौ ग्रैवेयक के, नौ लोकान्ति के, पांच अनुत्तर के, ये सब

गिनते हुए देव देविओं सहित नव्वाणु भेद देवों के होते हैं ॥ ८ ॥

अपजपज्जत्तभेएहिं सयट्ठाणुआ,
भवणावण जोइ वेमाणिया मिलिया ।
अहिअ तेसट्ठी सवि हुंति ते पणसया,
अभिहयापय दसय गुणि अ जाया तया ॥९॥

इन नव्वाणु के पर्याप्ता और अपर्याप्ता दो दो गिनते हुए भुवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष और वैमानिक इन चारों के मिलकर अट्ठाणु भेद होते हैं इस प्रकार १४+४८+३० +१९८=५६३ भेद नरकादि चारों गतियों के जीवों के हुए, उन्हें अभिहयादिक दश दश पदों से गिनते हुए-

पंच सहसा छतय भेय तीसाहिया,
रागदोसेहि ते सहस एगारसा ।
दुसयसट्ठी त्ति मणवयणकाए पुणो,
सह सतेत्तीस सयसत्त असिई घणो ॥१०॥

पांच हजार छसौ तीस भेद हुए, उन्हें राग और द्वेष से गुणा करते हुए ग्यारह हजार दो सौ साठ भेद, कुल हुए,

उन्हें मन वचन तथा काया से गुणा करने पर तैंतीस हजार सात सौ अस्सी भेद हुए ॥ १० ॥

करण कारण अणुमईइ संजोडिया,
एगलख सहसइग तिसय चालीसया ।
कालतिअ गणिय तिगलक्ख चउ सहसया,
वीसहिअ इरियमिच्छामिदुक्कडपया ॥११॥

पुनः उन्हें करना, कराना तथा अनुमोदना इन तीनों से गुणा करने पर एक लाख एक हजार तीन सौ चालीस भेद हुए, उन्हें तीन कालों से पुनः गुणा करने पर तीन लाख चार हजार और बीस भेद हुए उन प्रत्येक को 'मिच्छामि दुक्कडं' देने से इरियावहि के मिच्छामि दुक्कडं के उतने ही स्थान हुए ॥ ११ ॥

इणि परि चउरगइ माहिं जे जीवया,
कम्मपरिपाकि नवनविय जोणीठिया ।
ताह सव्वाह कर करिय सिर उप्परे,
देमि मिच्छामि दुक्कड बहु बहु परे ॥१२॥

इस प्रमाण से अपने अपने कर्म विपाक के अनुसार नई नई योनियों में चारों गतिओं में जीव भ्रमण कर रहा है। उन सबको मैं मस्तक नत हाथ जोड़ कर अनेकानेक वार 'मिच्छामि दुक्कडं' देता हूँ ॥ १२ ॥

इअ जिअ विविहप्परि मिच्छामि दुक्कडि,
करिहि जि भविअ सुठ्ठुमणा ।
ति छिंदिय भवदुहं पामिअ सुरसुहं,
सिद्धि नयरिसुहं लहइ घणं ॥१३॥

इस प्रकार से विविध प्रकार के जीवों के प्रति जो भाविक शुद्ध मन वचन और काया से "मिच्छामि दुक्कडं" करता है, वह संसार के दुःख काटकर बीच में देवों के सुखों को प्राप्त कर अन्तिम में मोक्ष का अनन्त सुख प्राप्त करता है ॥१३॥

नोटः—अन्य ग्रन्थों में ये ३०४०२० को छ साक्षी से गुणा करने पर १८२४१२० प्रकार से भी 'मिच्छामि दुक्कडं' होता है ऐसा निर्देश है।

॥ इति श्री इरियावहि कुलकस्य हिन्दी सरलार्थः समाप्तः ॥

卐

ॐ वैराग्य कुलकम् ॐ
[हिन्दी सरलार्थ युक्तम्]

अर्थकर्त्ता—आचार्य श्रीमद्विजयसुशीलसूरिः

❖

जम्म--जरा--मरणजले, नाणाविहवाहिजलयराइन्ने ।
भवसायरे असारे, दुल्लहो खलु माणुसो जम्मो ॥ १ ॥

अर्थ—जन्म जरा (वृद्धावस्था) और मरणरुप जलवाले तथा विविध प्रकार के व्याधिरूप जलचर जीवों से भरे हुए इस असार संसार रुप सागर में मनुष्य-मानव जन्म की प्राप्ति अवश्य दुर्लभ है ॥१॥

तम्मि वि आयरियखित्तं, जाइ--कुल--रुव--संपयाउय ।
चिंतामणिसारित्थो, दुल्लहो धम्मो य जिणभणिओ ॥२॥

अर्थ—उसमें (मनुष्य जन्म में) भी आर्यक्षेत्र, उत्तम जाति, उत्तम कुल, उत्तम रुप और सम्पदा प्राप्त होने पर भी चिन्ता मणिरत्न समान जिनभाषित धर्म (जैन धर्म) मिलना दुर्लभ है ॥ २ ॥

भवकोडिसयेहिं, परहिंडिउण सुविसुद्धपुन्नजोएण।
इत्तियमित्ता संपइ, सामग्गी पाविया जीव ! ॥ ३ ॥

अर्थ--हे जीव ! सैंकडो क्रोडो भवों तक संसार में परिभ्रमण करने के पश्चात् अत्यन्त विशुद्ध पुण्य के योग से इतनी समस्त सामग्री अब तुम को प्राप्त हुई है ॥ ३ ॥

रुवमसासयमेयं, विज्जुलयाचंचलं जए जीयं।
संझाणुरागसरिसं, खणरमणीयं च तारुन्नम् ॥ ४ ॥

अर्थ--यह रुप अशाश्वत--विनाशमान है, विश्व में बिजली के चमकार जैसा जीवन चंचल है और सन्ध्या समय के आकाश के रंग जैसी क्षणभर रमणीय युवानी है ॥ ४ ॥

गयकन्नचंचलाओ, लच्छीओ तियसचाउसारिच्छं।
विसयसुहं जीवाणं, बुज्झसु रे जीव ! मा मुज्झ ॥ ५ ॥

अर्थ--हाथी के कान जैसी लक्ष्मी चंचल है, इन्द्रधनुष्य के जैसा जीवों का इन्द्रियजन्य विषय सुख है, इसलिये हे जीव ! वोध पाम और चिंतित न हो ॥ ५ ॥

किंपाकफलसमाणा, विसया हालाहलोवमा पावा।
मुहमुहरत्तणसारा, परिणामे दारुणसहावा ॥ ६ ॥

अर्थ—विषयों किंपाकवृक्ष के फल के समान हैं, हलाहल [विष-झेर] जैसे हैं, पापकारी हैं, मुहूर्त्त मात्र सुन्दर और परिणामे दारुण स्वभाव वाले हैं ॥ ६ ॥

भुत्ता य दिव्वभोगा, सुरेसु असुरेसु तहय मणुएसु ।
न य जीव ! तुज्झ तित्ती, जलणस्स व कट्ठनियरेहिं ॥७॥

अर्थ--सुर और असुर लोक में, तथा मनुष्य भव में दिव्य भोगो भोगवने पर भी, हे जीव ! काष्ट से जैसे अग्नि तृप्त नहीं होती है वैसे ही तुमको भी भोगों से तृप्ति नहीं होती हैं ॥७॥

जह संझाए सउणाणं, संगमो जह पहे य पहियाणं ।
सयणाणं संजोगो, तहेव खणभंगुरो जीव ! ॥ ८ ॥

अर्थ--जैसे सन्ध्या काल में पक्षीओं का मिलन और मुसाफरी में मुसाफरों का समागम क्षणभंगुर होता है, वैसे हे जीव ! स्वजन कुटुम्बीजनों का समागम भी क्षणिक होता है ऐसा समज ॥ ८ ॥

पिय माइ भाइ भइणी,--भज्जा पुत्तत्तणो वि सव्वेवि ।
सत्ता अणंतवारं, जाया सव्वेसि जीवाणं ॥ ९ ॥

अर्थ--पिता, माता, बन्धु, बहन, पत्नी और पुत्र रूपे सर्व जीवों को सर्व जीवों के साथ अनंतीवार सम्बन्ध हुआ है ॥ ९ ॥

ता तेसिं पडिबंधं, उवरिं मा तं करेसु रे जीव ! ।
पडिबंधं कुणमाणो, इहयं चिय दुक्खिओ भमिसि ॥१०॥

अर्थ--इसलिये हे जीव ! उन्हों में प्रतिबन्ध (राग) न कर, जो उन्हों की साथ प्रतिबन्ध (राग) करेगा तो तु इधर भी दुःखी हो जायगा ॥ १० ॥

जाया तरुणी आभरणवज्जिया, पाढिओ न मे तणओ ।
धूया नो परिणीया, भइणी नो भत्तुणो गमिया । ११ ।

अर्थ--मेरी पत्नी आभरण-आभूषण बिना की है, मैंने पुत्र को अभी तक पढाया नहीं है, पुत्री की शादी की नहीं है, बहिन अपने पति के घर जाती नहीं है ॥ ११ ॥

थोवो विहवो संपइ, वट्टइ य रिणं बहुव्वेओ गेहे ।
एवं चिंतासंतावदुभिओ दुःखमणुहवसि [युग्मं] ।१२।

अर्थ--धन अल्प है, अभी शिर पर देवा हो गया है, गृह में अति उद्वेग-क्लेश चल रहा है, ऐसी चिन्ता सन्ताप से दुःखी हो कर तु दुःख का अनुभव करता है ॥ १२ ॥

काऊणवि पावाइं, जो अत्थो संचिओ तए जीव ! ।
सो तेसिं सयणाणं, सव्वेसिं होइ उवओगो ॥ १३ ॥

अर्थ--हे जीव ! पाप द्वारा जो धन तुमने एकत्र किया है, वह धन सर्व स्वजनों को उपयोगी होता है ॥ १३ ॥

जं पुण असुहं कम्मं, इक्कुचिय जीव ! तंसमणुहवसि ।
न य ते सयणा सरणं, कुगइए गच्छमाणस्स ॥ १४ ॥

अर्थ--हे जीव ! वह धन का संचय करने में एकत्र किये हुए पाप का दुःखरूप अनुभव तुमको अकेले को ही करना पड़ेगा । दुर्गति में जाता हुआ तुमको तेरे स्वजनों शरण देने वाले नहीं होंगे ॥ १४ ॥

कोहेणं माणेणं, माया लोभेणं रागदोसेहिं ।
भवरंगओ सुइरं, नडुव्व नच्चाविओ तं सि ॥ १५ ॥

अर्थ--क्रोध, मान, माया लोभ, राग और द्वेष इन सबोंने इस भवमण्डप में दीर्घकाल पर्यन्त नट की माफिक तुमको नचाया हुआ है ॥ १५ ॥

पंचेहिं इंदिएहिं, मणवयकएहिं दुट्ठजोगेहिं ।
बहुसो दारूणरुवं, दुःखं पत्तं तए जीव ! ॥ १६ ॥

अर्थ--हे जीव ! उन्मार्ग में गमन करनेवाली ऐसी पांचों इन्द्रियों के विषयों से और मन, वचन तथा काया का दुष्ट योगों से पुनः पुनः वह दारुण दुःख प्राप्त किया है ॥१६॥

ता एअन्नाउणं, संसारसायरं तुमं जीव ! ।
सयलसुहकारणम्मि, जिणधम्मे आयरं कुणसु ॥१७॥

अर्थ- इसलिये हे जीव ! इस संसार सागर के स्वरुप को जानकर, समस्त सुख के कारण भूत जिनधर्म में आदर कर ।१७।

जाव न इंदियहाणी, जाव न जररक्खसी परिप्फुरइ ।
जाव न रोग वियारा, जाव न मच्चु समुल्लियइ ।१८।

अर्थ--जब तक इन्द्रियों की हानी हुई नहीं है अर्थात् नुकशान पहुंचा नहीं है, जब तक वृद्धावस्था रूपी राक्षसी स्फूरायमान हुई नहीं है,जब तक रोग का विकार हुआ नहीं है और जब तक मृत्यु-मरण समीप में आया नहीं है ॥ १८ ॥

जह गेहम्मि पलित्ते, कूवं खणियं न सक्कइ को वि ।
तह संपत्ते मरणे, धम्मो कह कीरए जीव ! ॥ १६ ॥

अर्थ–जैसे गृह में अग्नि (आग) लगते समय कूप खोदा नहीं जाता, वैसे मृत्यु-मरण प्राप्त होते समय हे जीव ! धर्म किस तरह हो सकता ? अर्थात् नहीं हो सकता ॥ १६ ॥

पत्तम्मि मरणसमए, डज्झसि सो अग्गिणा तुमं जीव !
वग्गुरपडिओ व मओ, संवट्टमिउ जहवि पक्खी ॥२०॥

अर्थ—जाल में पडा हुआ संवर्तमृगपक्षी जैसे मृत्यु पा गया वैसे हे जीव ! मृत्यु समय आने पर तूं शोक रूपी अग्नि से जलता है दुःखी होता है ॥२०॥

ता जीव ! संपयं चिय, जिणधम्मे उज्जमं तुमं कुणसु ।
मा चिन्तामणिसम्मं, मणुयत्तं निप्फलं णेसु ॥ २१ ॥

अर्थ—इसलिये हे जीव ! अब तूं जिनधर्म में उद्यम कर, चिन्तामणिरत्न के जैसा मनुष्य भव निष्फल न गुमा ॥२१॥

ता मा कुणसु कसाए, इंदियवसगो य मा तुमं होसु ।
देविंद साहुमहियं, सिवसुक्खं जेण पावाहिसि ॥२२॥

अर्थ—इसलिये [हे जीव !] तूं कषायों को मत कर और इन्द्रियों के वश नहीं होना, जिससे देवेन्द्रों से और साधुओं से पूजित ऐसा मोक्ष सुख को तूं पायेगा ॥ २२ ॥

॥ इति श्री वैराग्य कुलकस्य हिन्दी सरलार्थः समाप्तः ॥

अथ वैराग्यरंग कुलकम्

[हिन्दी सरलार्थ युक्तम्]

मूलकर्त्ता—श्री इन्द्रनन्दी नामक गुरोः शिष्यः ।

अर्थकर्त्ता—आचार्य श्रीमद् विजयसुशीलसूरिः ।

卐

पणमिय समलजिणिंदे, निअगुरुचलणे अ महरिसि सव्वे
वेरग्गभावजणयं, भावणाकुलयं लिहेमि अहं ॥१॥

अर्थ—सर्व जिनेश्वरों को नमस्कर करके तथा अपने गुरु के चरण कमल को और सभी महर्षिओं को भी नमस्कार कर के वैराग्य भाव को उत्पन्न करने वाले इस 'भावना कुलक' को मैं लिखता हूं-अर्थात् मैं रचना करता हूँ ॥१॥

जीवाण होइ इट्ठं सुखं मुखं विणाओ तं नत्थि ।
जइ अत्थि किम वि ता पुण निच्चं वेरग्गरसिआणं ।२।

अर्थ—प्राणी मात्र को सुख ईष्ट है, किन्तु वह (सुख) मोक्ष के अतिरिक्त अन्य नहीं है और (संसार में) जो कुछ भी सुख है तो वह निरन्तर वैराग्य के रसिक जीवों को ही है (अन्य को नहीं) ॥२॥

तमहा रागमहायव–तविएण अईव सेविअव्वमिणं।
तदुवसमकए सीयल विमलवेरग्गरंग जलं ॥३॥

अर्थ–अतः रागरूपी महान आतप धूप से जलते हुए तप्त जीवों को इस ताप के उपशम के लिये इस शीतल एवं निर्मल वैराग्य रूप जल का सेवन करना चाहिये ॥३॥

वेरग्गजलनिमग्गा चिट्ठंति जिआ सयावि जे तेसिं।
वम्महदहणाउ भयं थोवंपि न हुज्ज कइआवि ॥४॥

अर्थ–वैराग्यरूपी जल में निरन्तर निमज्जित रहते है उन्हें कामाग्नि का अल्पमात्र भी भय कदापि नहीं रहता ॥४॥

बहुविह विसयपिवासा-नइसंगमवड्ढमाणराग जलं।
कुविकप्पनक्कचक्काइ- दुट्ठजलयरगणाइन्नं ॥५॥
पज्जलिअभयणवाडव-बिभीसणं जइ पुमं महसि तरिउं।
तारुण्णसायरं ता आरुअह वेरग्गवरपोअं ॥ ६ ॥

अर्थ–अत्यन्त विषय पिपासारूपी नदियों के संगम से वृद्धि पाते हुए राग रूपी जलवाले, कुविकल्प रूप नक्रचक्रादि दुष्ट जलचर जीवों के समूह से व्याप्त तथा प्रज्वलित कामाग्निरूप वडवाग्नि से युक्त अति भयंकर यौवनावस्था रूप सागर को पार करने के लिये हे पुरुष ! तू वैराग्य रूप प्रवहण पर आरुढ था ॥ ५-६ ॥

वेरग्गतुरंगं चडिओ, पावेसि सिवपुरं झत्ति।
जइ कुज्ज भावणागई-अब्भासो तस्स पुव्वकओ ॥७॥

अर्थ—वैराग्यरूपी श्रेष्ठ अश्वपर चढकर तू शिवपुर शीघ्र पहूँच सकता है, किन्तु तुम्हारे द्वारा भावनागति का पूर्वाभ्यास किया हुआ होगा तभी यह संभव है ॥७॥

वेरग्ग भावणाए भाविअचित्ताण होइ जं सुखं।
तं नेव देवलोए देवाणं सइंदगाणंपि ॥८॥

अर्थ—वैराग्य की भावना से युक्त चित्तवाले को जो सुख होता है वह देवलोक में इन्द्रसहित देवों को भी नहीं होता ॥८॥

ता मणवंच्छिवि अरणकप्पद्दुमकामकुंभसारिच्छं।
मा मुंचसु वेरग्गं खणमवि निअचित्तरंजणयं॥ ९ ॥

अर्थ—अतः मनोवांछित सुख को देने वाले कल्पवृक्ष और कामकुंभ के समान स्वयं चित्त का रंजन करने वाले इस वैराग्य का तू सेवन कर ॥ ९ ॥

पणिअपरिवज्जण पसु-इत्थीपंडगविवज्जिआ वसही।
सज्झायझाणजोगो, हवंति वेरग्गबीयाइं ॥ १० ॥

अर्थ—प्रवीत (स्निग्ध) भोजन त्याग, पशु स्त्री और नपुंसक वसती को छोडना, सज्झाय ध्यान के योग को करना यही वैराग्य के बीज है ॥ १० ॥

तम्हा परिमिअलूहाहारेण समयभाविअमणेणं ।
होऊण इत्थियाओ, दूरेणं वज्जिअव्वाओ ॥११॥

अर्थ—अतः परिमित आहार वाले, समय के अनुसार मन से स्त्रियों से दूर रहना चाहिये तथा उनके व्यवहार हाव भाव में रत कभी भी न रहना चाहिये ॥११॥

जम्हा मणेण अणणं, चिंतंति भणंति अन्नमेव पुणो ।
वायाए काएण य ताओ अन्नं चिअ कुणंति ॥१२॥

अर्थ—स्त्रियां मन से अन्य को याद करती है, चिन्तन अन्य का करती है और मनो विनोद पूर्ण अन्य से करती है ।

कत्थ वि असच्चरोसं, दंसेंति कहिं चि अलिअयरतोसं।
कस्स वि अ देंति जोसं हेलाइ भणंति पुण मोसं ।१३।

अर्थ—स्त्री किसी पर अत्यन्त रोष दिखाती है, किसी पर अत्यन्त तोष दिखाती है, किसी को दोष देती है और खेल खेल में ही असत्य बोल देती है ॥१३॥

कत्थ वि कुणंति हावं, कत्थ वि पयडंति नियहिअयभावं।
अवलोइआवि पावं, पसवंति कुणंति मणतावं ॥१४॥

अर्थ—स्त्री किसी के साथ हावभाव करती है, किसी के साथ अपने हृदय का भाव प्रकट करती है, जो दृष्टि मात्र से ही पाप प्रसविनी है तथा मनोताप उत्पन्न करने वाली है ॥१४॥

केणवि कुणंति हासं, कस्स वि वयणे हि सुकयनिन्नासं।
विरयंति नेहपासं, कत्थ वि दंसेति पुण तासं ॥१५॥

अर्थ--किसी के साथ हास्य करती है और सुकृतों को वचनों द्वारा नष्ट करती है, स्नेहरुपी पाश में जकडती है तथा किसी को वक्र मोह से त्रास देती है ॥ १५ ॥

कत्थ वि दिट्ठिनिवेसं, कुणंति कत्थ वि उब्भडं वेसं।
कत्थ वि निअकरफासं, करेंति ताओ मयणवासं ॥ १६॥

अर्थ--किसी के साथ दृष्टि विभ्रम उत्पन्न करती है, किसी के साथ रहकर उद्भट वेश को धारण करती है अर्थात् वेश विन्यास से मोहित करती है तथा किसी के साथ अपना हस्त का स्पर्श अन्य कामोत्पाद उत्पन्न करती है ॥ १६ ॥

इअ तासि चिट्ठाओ, चंचल चित्ताण हुंति णेगविहा।
इक्काए जीहाए ताकह कहिउं मए सक्का ॥ १७॥

अर्थ--इस प्रकार स्त्री की चेष्टायें चंचल चित्तवाली होने से अनेक प्रकार की होती हैं, उसका मैं एक ही जिह्वा द्वारा कहने के लिये किस तरह शक्तिवन्त हो सकूँ ? ॥१७॥

अहवा विसमा विसया चवला पाएण इत्थिओ हुंति।
माऽलियाय तेण य चिट्ठंति अणेगहा एवं ॥ १८॥

अर्थ--अथवा विषयों विषम है तथा स्त्रियां प्रायः करके चंचल होती है, इसलिये तू उसका आलिंगन स्पर्श मतकर क्योंकि यह अनेक चेष्टाओं द्वारा चित्त चुरा लेती है ॥१८॥

ता तासि को दोसो, जइ अप्पा हु विसय विसविमुहो।
ता न हु कीरइ ताहिं, विवसो कइ आवि निच्छमेण ॥१९॥

अर्थ--किन्तु इसमें स्त्री का क्या दोष है? क्योंकि आत्मा स्वयं विषयों के विष से आक्रान्त होता है तो तू उस आत्मा को ही विषयरूपी विष से विमुख कर। जिससे वह स्त्रीकदापि निश्चयपूर्वक तुमको अंशमात्र भी विवश--परवश नहीं कर सकती ॥१९॥

जे थूलभद्दपमुहा साहुअ सुदंसणाइसिट्ठिवरा।
थिर चित्ता तेसिं कय किच्चा हि अईव थुत्तीहिं ॥२०॥

अर्थ--हे भव्य! स्थूलभद्र आदि जैसे मुनिओं और सुदर्शन आदि जैसे श्रेष्ठिओं (ब्रह्मचर्य में) स्थिर चित्त वाले अनुपम हो गये है उनकी स्तुति करके कृतकृत्य होना चाहिए ॥२०॥

केवि य इह का पुरिसा रुट्ठाए महिलिआइ पाएण।
ताडिज्जंता वि पुणो चलणो लग्गंति कामंधा ॥२१॥

अर्थ--संसार में ऐसे भी कितने ही कापुरुष (कुत्सित जनो) विद्यमान है जो स्त्रियों के पावों से ठुकराये जाने पर

भी उनका अनुनय विनय करते हैं। स्त्रियों के रुष्ट होने पर भी उन्हें याचना से प्रसन्न करना चाहते है और कामान्ध होकर उनके पांवों में पडते हैं ।।२१।।

हुंति हु निमित्तमित्तं इत्थीओ धम्मविग्घकरणंमि।
परमत्थओ अ अप्पा हेऊ, विग्घं च धम्मस्स ।।२२।।

अर्थ–धर्मकार्य में विघ्न करने वाली स्त्रियां हैं यह तो निमित्त मात्र है। वास्तव में परमार्थ से तो धर्म में विघ्न का हेतुभूत आत्मा ही है (आत्मा से ही विघ्न उत्पन्न होते हैं)।

अप्पाणं अप्पवसे, कुणंति जे तेसिं तिजयमवि वसयं।
जेसिं न वसो अप्पा ते हुंति वसे तिहुअणस्स ।।२३।।

अर्थ–जो मनुष्य स्वयं की आत्मा को वश में करता है वह तीन लोक को भी वश में करता है। जिसे स्वयं की आत्मा वश में नहीं है वह तीन लोक के वश में है ।। २३ ।।

जेण जिओ निअ अप्पा, दुग्गइ-दुःखाइं तेण जिणिआइं।
जेणप्पा नेव जिओ सो उ जिओ दुग्गइ दुहेहि ।।२४।।

अर्थ–जिसने स्वयं की आत्मा को जीत लिया उसने दुर्गति के दुःख को भी जीत लिया है ऐसा समझना चाहिये।

जिसने स्वयं की आत्मा को जीता नहीं है उसे दुर्गति के दुःखों से जीता हुआ समझे तथा दुर्गति को भोगने वाला समझे ।। २४ ।।

ता अप्पा कायव्वो, सयावि विसएसु पंचसु विरत्तो ।
जह नेव भमइ भीसणभवकंतारे दुरुत्तारे ।। २५ ।।

अर्थ—अतः सदा आत्मा को इन्द्रियों के विषयों से विरक्त रखना चाहिये । जिससे आत्मा भवाटवी में भटके नहीं तथा दुःख प्राप्त न कर सके ।। २५ ।।

रमणीगणतणकंचणमट्टि अमणिलिट्ठुमाइएसु सया ।
समया हियए जेसिं तेसि मणो मुणसु वेरग्गं ।। २६ ।।

अर्थ-स्त्रियों के समूह, तृण, कंचन, मिट्टी, मणि और पत्थर आदि पदार्थों में सर्वदा जिसके हृदय में समभाव रहता है उसीके मन में वैराग्य रहता है ऐसा समझ ।। २६ ।।

समया अमिअरसेणं, जस्स मणो भाविअं सया हुज्जा ।
तस्स मणो अरइजणयं नेव दुहं हुज्ज कइआवि ।।२७।।

अर्थ—समता रूपी अमृत के रस द्वारा जिसका मन सदा भावित रहता है उसके मन में अरति को उत्पन्न करने वाले दुःख कभी उत्पन्न नहीं होते ।। २७ ।।

समयावरसुरधेणू, खेलइ लीलाइ जस्स मणसयणे ।
सो सयलवंछिआइं, पावइ जा सासयं ठाणं ॥ २८ ॥

अर्थ–समतारूपी श्रेष्ठ कामधेनु जिसके मनरूपी सदन में लीला पूर्वक खेल रही है वह सारे वांछित यावत् शाश्वत स्थान पर्यन्त सुखों को प्राप्त करता है ॥ २८ ॥

वेरग्गरंगकुलयं, एअं जो धरइ सुत्त अत्थ जुअं ।
संवेगभाविअप्पा, परमसुहं लहइ सो जीवो ॥ २९ ॥

अर्थ–यह '**वैराग्यरंगकुलक**' जो मनुष्य सूत्र तथा अर्थ सहित स्वयं के मन में धारण करता है वह संवेग भावी आत्मा वाला जीव परम सुख को प्राप्त करता है ॥ २९ ॥

तवगणगयणदिवायर–सूरीश्वरइंदनंदिसुगुरुणं ।
सीसेण रइअमेयं, कुलयं सपरोएस कए ॥ ३० ॥

अर्थ–तपगच्छरूप गगन में सूर्य समान ऐसे **श्री इन्द्रनन्दी** सुगुरु के शिष्य ने यह कुलक [**वैराग्यरंगकुलक**] स्व–पर के उपदेश के लिये रचा है ॥ ३० ॥

॥ इति श्री वैराग्यरंगकुलकस्य सरलार्थः समाप्तः ॥

प्रमादपरिहार कुलकम्
[हिन्दी सरलार्थ युक्त]

卐

दुक्खे सुखे सया मोहे, अमोहे जिणसासणं ।
तेसिं कयपणामोऽहं, संबोहं अप्पणो करे ॥१॥

अर्थ—जिसने दुःख में और सुख में, मोह में तथा अमोह में जिनशासन को स्वीकार किया है। उसको किया है प्रणाम जिसने ऐसा मैं सम्यक् प्रकार के बोध को अपना करता हूं अर्थात् स्वीकारता हूं ॥ १ ॥

दसहि चुल्लगाइहिं, दिट्ठंतेहिं कयाइओ ।
संसरंता भवे सत्ता, पावंति मणुयत्तणं ॥२॥

अर्थ—संसार में परिभ्रमण करते हुए जीव दश दृष्टांत द्वारा दुर्लभ ऐसे मनुष्यत्व को कदाचित् (सद्भाग्य के योग) प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

नरत्ते आरियं खित्तं, खित्तेवि विउलं कुलं ।
कुलेवि उत्तमा जाई, जाईए रूवसंपया ॥३॥
रूवेवि हु अरोगत्तं, अरोगे चिरजीवियं ।
हियाहियं चरित्ताणं, जीविए खलु दुल्लहं ॥४॥

अर्थ-मनुष्यत्व प्राप्त होने पर भी आर्यक्षेत्र मिलना दुर्लभ है, आर्यक्षेत्र प्राप्त होने पर भी विपुल उत्तम कुल मिलना दुर्लभ है, उत्तम कुल प्राप्त होने पर भी उत्तम जाति मिलनी दुर्लभ है, उत्तम जाति प्राप्त होने पर भी रूप संपत्ति-पंच इन्द्रियों की पूर्णता मिलनी दुर्लभ है, रूपसंपत्ति-पंच-इन्द्रियों की पूर्णता मिलने पर भी आरोग्य की प्राप्ति होनी दुर्लभ है, आरोग्य की प्राप्ति होने पर भी चीरजीवित-दीर्घ आयुष्यत्व की प्राप्ति दुर्लभ है और दीर्घ आयुष्य की प्राप्ति होने पर भी संयम-चारित्र से होने वाला हित या अहित को जानना दुर्लभ है ॥ ३-४ ॥

सद्धम्मसवणं तंमि, सवणे धारणं तहा ।
धारणे सद्दहाणं च, सद्दहाणे वि संजमे ॥५॥

अर्थ-उक्त ये सब प्राप्त होने पर भी धर्म का श्रवण करना याने धर्म को सुनना दुर्लभ है, धर्म का श्रवण होने पर भी

उसकी धारणा करनी दुर्लभ है, धर्म की धारणा होने पर भी उसकी सद्दहणा--श्रद्धा होनी दुर्लभ है, और सद्दहणा--श्रद्धा होने पर भी संयम--चारित्र की प्राप्ति दुर्लभ है ॥ ५ ॥

एवं रे जीव दुल्लभं, बारसंगाण संपयं ।
संपयं पाविऊणोह, पमाओ नेव जुज्जए ॥६॥

अर्थ--इस तरह हे जीव ! उक्त कथन किये हुए मनुष्य जन्मादिक बारह प्रकार की सम्पदा मिलनी दुर्लभ है । वे सब मिलने पर भी प्रमाद करना वह उचित नहीं है ॥ ६ ॥

पमाओ अ जिणिंदेहिं, अट्ठहा परिवज्जिओ ।
अन्नाणं संसओ चेव, मिच्छानाणं तहेव य ॥७॥
रागद्दोसो मइब्भंसो, धम्मंमि य अणायरो ।
जोगाणं दुप्पणिहाणं, अट्ठहा वज्जियव्वओ ॥८॥

अर्थ--जिनेश्वर--तीर्थंकर भगवन्तों ने आठ प्रकार का प्रमाद त्याग करने का कहा है । उन आठ प्रकार के प्रमादों के नाम इस तरह है—

(१) अज्ञान, (२) संशय, (३) मिथ्याज्ञान, (४) राग, (५) द्वेष, (६) मतिभ्रंश, (७) धर्म में अनादर, और (८) योग का दुष्प्रणिधान इन आठों प्रकार के प्रमादों का त्याग करना चाहिये ॥ ८ ॥

वरं महाविसं भुत्तं, वरं अग्गीपवेसेणं ।
वरं सत्तूहि संवासो, वरं सप्पेहि कालियं ॥९॥
वा धम्मंमि पमाओ जं, एगमुच्चु य विसाइणा ।
पमाएणं अणंताणि, जम्माणि मरणाणि य ॥१०॥

अर्थ- महाविष खाना अच्छा, अग्नि में प्रवेश करना अच्छा, शत्रु के साथ रहना--निवास करना अच्छा और सर्पदंश से कालधर्म याने मृत्यु पाना अच्छा, किन्तु प्रमाद करना अच्छा नहीं। कारण कि--विषयादिक (झेर आदि) के प्रयोग द्वारा तो एक वार मृत्यु होती है, लेकिन प्रमाद द्वारा तो अनंतान्त जन्म-मरण करना पड़ता है ॥ ९--१० ॥

चउदसपुव्वी अहारगा य मणनाणवीयरागावि ।
हुंति पमायपरवसा, तयणंतरमेव चउगइया ॥११॥

अर्थ--चौदह पूर्वी, आहारक शरीर की लब्धि वाले, मनः पर्यवज्ञानी और वीतराग (ग्यारहमें गुणस्थान पर पहुंचे हुये) ये सब प्रमाद के परवशपणा से तदनंतर चारों गति में परिभ्रमण--गमन करते हैं ॥ ११ ॥

सग्गापवग्गमग्गंमि, लग्गं वि जिणसासणे ।
पडिया हा पमाएणं, संसारे सेणियाइया ॥१२॥

अर्थ-जिनशासन (जैनशासन) में स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) के मार्ग में लगे हुए भी प्रमाद द्वारा श्रेणिक आदि संसार में प्रतिपात पाये हुए है, वह खेद की बात है ॥१२॥

सोढाइं तिक्ख(व्व)दुक्खाई, सारीरमाणसाणि य ।
रे जीव ! नरए घोरे, पमाएणं अणंतसो ॥१३॥

अर्थ-रे जीव ! तुमने शारीरिक और मानसिक तीक्ष्ण (तीव्र) दुःख प्रमाद द्वारा अनंतीवार घोर नरक में सहन किये हैं ॥ १३ ॥

दुक्खाणणेगलक्खाइं, छुहातन्हाइयाणि य ।
पत्ताणि तिरियत्तेवि, पमाएणं अणंतसो ॥१४॥

अर्थ-[अरे जीव !] तुमने तिर्यंचपणा में भी क्षुधा--तृषादिक अनेक लक्ष दुःखो अनंतीवार प्रमाद द्वारा प्राप्त किये हैं ॥ १४ ॥

रोग--सोग--वियोगाई, रे जीव मणुयत्तणे ।
अणुभूयं महादुक्खं, पमाएणं अणंतसो ॥१५॥

अर्थ--अरे जीव ! तुमने मनुष्यपणा में भी रोग, शोक, और वियोगादि महादुःखो प्रमाद द्वारा अनन्तीवार अनुभवे है ॥ १५ ॥

कसायविसयाईया, भयाईणि सुरत्तणे ।
पत्ते पत्ताइं दुक्खाइं, पमाएणं अणंतसो ॥१६॥

अर्थ--देवपणा में कषाय से, विषय से भयादिक प्राप्त होने पर भी तुमने अनन्तीवार दुःखों को प्राप्त किया है ॥१६

जं संसारे महादुक्खं, जं मुक्खे सुक्खमक्खयं ।
पावंति पाणिणो तत्थ, पमाया अप्पमायओ ॥१७॥

अर्थ--संसार में जो प्राणी महादुःख और मोक्ष में जो प्राणी अक्षय सुख प्राप्त करता है वह प्रमाद से और अप्रमाद से ही प्राप्त करता है । अर्थात् प्रमाद से दुःख और अप्रमाद से सुख प्राप्त करता है ॥ १७ ॥

पत्तेवि सुद्धसम्पत्ते, सत्ता सुत्तनिवत्तया ।
उवउत्ता जं न मग्गंमि हा पमाओ दुरंतओ ॥१८॥

अर्थ--शुद्ध सम्यक्त्व-समकित प्राप्त होने पर भी श्रुत के निर्वतक--प्रवर्तक ऐसे जीवों भी जो मार्ग में उपयुक्त नहीं

रहते हैं, वे हा, इति खेदे ! दुरंत ऐसे प्रमाद का ही फल है। (ऐसे दुरंत प्रमाद को धिक्कार हो) ।। १८ ।।

नाणं पठंति पाठिंति, नाणासत्थविसारया।
भुल्लंति ते पुणो मग्गं, हा पमाओ दुरंतओ ।।१९।।

अर्थ- नाना प्रकार के शास्त्र के विशारद ऐसे पंडितों अन्य को पढाने वाले और स्वयं पढने वाले भी मार्ग को भूल जाते हैं, वह दुरंत ऐसे प्रमाद का ही फल है ।। १९ ।।

अन्नेसिं दिंति संबोहं, निस्संदेहं दयालुया।
सयं मोहहया तहवि, पमाएणं अणंतसो ।।२०।।

अर्थ--दयालु ऐसे मनुष्यों दूसरे को निःसंदेह ऐसे सम्बोधने याने उपदेश को देते हैं, तो भी स्वयं अनन्तीवार प्रमाद द्वारा गिरते हैं। (इसलिये ऐसे प्रमाद को धिक्कार हो) ।। २० ।।

पंचसयाण मज्झंमि, खंदगायरिओ तहा।
कहं विराहओ जाओ, पमाएणं अणंतसो ।।२१।।

अर्थ--पांचशें शिष्यो आराधक होने पर भी गुरु खंधक नामक आचार्य विराधक क्यों हुये ? (उसका कारण क्रोध-

रूप प्रमाद ही है) तस तरह प्रमाद द्वारा जीव अनन्तीवार विराधक हुआ है ॥ २१ ॥

तयावत्थं हत्रो खड्डु, देवेण पडिबोइत्रो ।
अज्जसाढमुणी कट्ठं, पमाएणं अणंतसो ॥२२॥

अर्थ--उसी अवस्था वाले पृथ्वीकायादिक नामवाले क्षुल्लकों को (बालकों को) विनाश करने वाले अषाढामुनि आर्य को देव ने प्रतिबोध दिया। हा इति खेदे ! कष्टकारी हकीकत है कि प्रमाद द्वारा यह जीव अनन्तीवार गीरता है ॥२२॥

सूरिवि महुरामंगू, सुत्तअत्थधरा थिरं ।
नगरनिद्धमणो जक्खो, पमाएणं अणंतसो ॥२३॥

अर्थ--मथुरावासी मंगु नाम के आचार्य सूत्र अर्थ को धारण करने वाले और स्थिर चित्त वाले होने पर भी नगर की खाल में यक्ष हुए। इस तरह प्रमाद द्वारा अनंतीवार होता है ॥२३॥

जं हरिसविसाएहिं, चित्तं चिंतिज्जए फुडं ।
महामुणीणं संसारे, पमाएणं अणंतसो ॥२४॥

अर्थ—आनन्द और विषाद द्वारा मुनिओं जो स्पष्टपणे विचित्र चिन्तवन कर रहे हैं, वह उन्हों को संसार में परिभ्रमण कराते हैं। इस तरह प्रमाद अनंतीवार करता है ॥२४॥

अप्पायत्तं कयं संतं, चित्तं चारित्तसंगयं ।
परायत्तं पुणो होइ, पमाएणं अणंतसो ॥२५॥

अर्थ—चित्त को चारित्रसंगत बनाकर आत्मायत्त याने आत्माधीन किये हुए भी वह फिर परायत्त याने पराधीन होता है वह प्रमाद का ही फल है । इस तरह प्रमाद ने अनंतवार किया हुआ है ॥ २५ ॥

एयावत्थं तुमं जाओ, सव्वसुत्तो गुणायरो ।
संपयंपि न उज्जुत्तो, पमाएणं अणंतसो ॥ २६ ॥

अर्थ—ऐसी अवस्था वाले तू सब सूत्र का पारगामी और गुणाकार याने गुणवान होने पर भी वर्त्तमान काल में उसमें (संयम में) उद्युक्त नहीं होता है, वह प्रमाद का ही फल है । इस तरह प्रमादने अनंतवार किया है ॥ २६ ॥

हा हा तुमं कहं होसि, पमायकुलमंदिरं ।
जीवे मुक्खे सया सुक्खे, किं न उज्जमसी लहुं ॥२७॥

अर्थ—हा हा इति खेदे ! प्रमाद के कुलमन्दिर (स्थान) ऐसे तेरा क्या होगा ? तू सर्वदा सुखवाले मोक्ष में क्युं शीघ्र उद्यमवाला नहीं होता ? ॥ २७ ॥

पावं करेसि किच्छेण, धम्मं सुखेहिं नो पुणो ।
पमाएणं अणंतेणं, कहं होसि न याणिमो ॥२८॥

अर्थ—तूं कष्ट सहन कर के भी पाप करता है और सुखी पणा में धर्म नहीं करता । इस से अनंता प्रमाद द्वारा हे जीव ! तेरा क्या होगा ! वह मैं नहीं जाणता अर्थात् नहीं कह सकता ॥ २८ ॥

जहा पयट्टंति अणज्ज कज्जे,
तहा विनिच्छं मणसावि नूणं ।
तहा खणेगं जई धम्मकज्जे,
ता दुक्खिओ होइ न कोइ लोए ॥२९॥

अर्थ–जिस तरह जीवों (अनार्य) पापकार्य में प्रवृत्ति करते हैं उसी तरह निश्चे मन द्वारा भी शुभ कार्य में प्रवृत्ति नहीं करते । वे एक क्षण मात्र भी जो धर्म कार्य में उस तरह प्रवृत्ति करे तो इस लोक में कोई भी जीव दुःखी न होवे ॥ २९ ॥

जेणं सुलद्धेण दुहाई दूरं,
वयंति आयंति सुहाई नूणं ।

रे जीव ! एयंमि गुणालयंमि,
जिणिंदधम्मंमि कहं पमाओ ॥ ३० ॥

अर्थ--जो प्राप्त होने पर दुःखों दूर होते हैं और सुख समीप आते हैं। हे जीव ! ऐसे गुणालय याने गुण के स्थानरूप जिनेन्द्र धर्म में क्युं प्रमाद करते हो ? ॥ ३० ॥

हा हा महापमायस्स,
सव्वमेयं वियंभियं।
न सुणंति न पिच्छंति,
कन्नदिट्ठीजुयावि जं ॥ ३१ ॥

अर्थ--हा हा इति खेदे ! महाप्रमाद का यह सब विजृंभित है कि जिससे कर्ण और नेत्र दोनों होने पर भी यह जीव सुनता नहीं, और देखता भी नहीं है ॥ ३१ ॥

सेणावई मोहनिवस्स एसो,
सुहाणुहं विग्घकरो दुरप्पा।
महारिऊ सव्वजियाण एसो,
अहो हु कट्ठंति महापमाओ ॥ ३२ ॥

अर्थ--यह महाप्रमाद मोहराजा का सेनानी है, सुखीजनों को धर्म में विघ्नकर्त्ता दुरात्मा है। तथा सर्व जीवों का यह महान रिपु याने शत्रु है अहो! यह महाकष्टकारी हकीकत है ॥३२॥

एवं वियाणिऊणं मुंच
पमायं सयावि रे जीव।
पाविहिसि जेण सम्मं,
जिणपयसेवाफलं रम्मं ॥ ३३ ॥

अर्थ--इस तरह जाणकर रे जीव! तूं सदा के लिये प्रमाद को छोड़ दे--कि जिससे सम्यग् जिनपाद याने जिन-चरण की सेवा का सुन्दर ऐसा फल मिले-प्राप्त करे ॥३३॥

॥ इति प्रमादपरिहार कुलकस्य सरलार्थः सम्पूर्णः ॥

卐 प्र....श....स्ति. 卐

[१]

तपगच्छ के नायक सूरि सम्राट् नेमिसूरीश के,
पट्टधर साहित्य सम्राट् लावण्यसूरीश्वर के।
पट्टधर धर्मप्रभावक श्री दक्षसूरिराज के,
पट्टधर सुशीलसूरिने हितार्थ सर्व जीव के ॥१॥

[२]

दो सहस पांत्तीस नृप विक्रम वर्ष चातुर्मास के,
विजयादशमी के दिने राजस्थान मरुधर के।
गुडाबालोतान नगरे उत्सव आश्विन ओली के,
हिन्दी सरलार्थ पूर्ण किया कुलक संग्रह ग्रन्थ के ॥२॥

卐 सद् गुरुवे नमः 卐

जैनधर्मदिवाकर-राजस्थानदीपक-मरुधरदेशोद्धारक पूज्यपाद् **आचार्यदेवश्रीमद् विजयसुशीलसूरीश्वरजी म० सा०** का विक्रम संवत् २०३५ की साल में **गुडाबालोतान** में परमशासनप्रभावना पूर्वक किया गया चातुर्मास का संक्षिप्त वर्णन।

(१)

चातुर्मास प्रवेश, आचार्यपदप्रदान तथा ध्वजारोहण

[१] गत वर्ष अगवरी में चिरस्मरणीय अभूतपूर्व चातुर्मास सुसम्पन्न करके पाली-खौड़ त्रिगामी-चाणोद-भानपुरा-वराडा आदि स्थलों में महोत्सव तथा सादडी में अंजन-शलाका--प्रतिष्ठा तथा बाली--ढीकोड़ा-वरमाण-मंडार-सील्दर-वलदरा आदि क्षेत्रों में प्रतिष्ठा महोत्सव आदि कार्य सुसम्पन्न करके आषाढ़ शुद १० गुरुवार दिनांक ५-७-७६ के दिन अगवरी से विहार कर गुडाबालोतान नगर में चातुर्मास के लिए भव्य स्वागत पूर्वक प० पू० आचार्य महाराजे उपाध्याय आदि परिवार युक्त प्रवेश किया। अनेक गहुँलीओ हुई।

उसी दिन—

(१) स्वर्गीय साहित्य सम्राट् प० पू० **आचार्यप्रवर श्रीमद्विजय लावण्यसूरीश्वरजी म० सा०** के पट्टधर शिष्यरत्न पूज्य **उपाध्याय श्रीविकासविजयजी गणिवर्य** को आचार्य पदार्पण की नाण समक्ष क्रिया हुई, और उन्हें शास्त्र विशारद पद से समलंकृत नूतन **आचार्य श्रीमद्विजयविकासचन्द्रसूरि** नाम से पूज्यपाद् **आचार्यदेव श्रीमद्विजयसुशीलसूरीश्वरजी म० सा०** ने चतुर्विध संघ समक्ष जाहेर किये।

(२) ज्ञानाभ्यासी-कार्यदक्ष पूज्य **मुनिराज श्रीजिनोत्तमविजयजी म.** को **श्रीमहानिशिथ सूत्र के योग में** प्रवेश कराया।

(३) **प० पू० शासन सम्राट् समुदाय** के आज्ञानुवर्तिनी स्वर्गीय पूज्य साध्वीजी श्रीजिनेन्द्रश्रीजी म० के परिवार की पू० सा० श्री कीर्त्तिसेनाश्रीजी को श्री आचारांग सूत्र के योग में तथा पू० साध्वी श्री भव्यपूर्णाश्रीजी और पू० साध्वी श्रीतत्त्वरुचिश्रीजी को श्रीउत्तराध्ययन सूत्र के योग में प्रवेश कराये।

(४) शासनप्रभावक परमपूज्य **आचार्यवर्य श्रीमद्विजयधर्मसूरीश्वरजी म० सा०** की आज्ञानुवर्त्तिती पू०

सा० श्रीकुमुदप्रभाश्रीजी की प्रशिष्या नूतन साध्वी श्री कल्पधर्माश्रीजी की बडी दीक्षा की गई ।

(५) मध्याह्ने विजयमुहूर्त्त में **श्रीऋषभदेवजी के मन्दिर में** विधिपूर्वक नूतन दण्ड ध्वजारोहण किया गया और बृहद्शान्तिस्नात्र सुन्दर पढाया गया ।

चातुर्मास प्रवेश और आचार्यपदप्रदानादि प्रसंग पर तखतगढ़ से पधारे हुए शा० पुखराज हजारीमलजी की ओर से संघ पूजा हुई। तदुपरांत गुडाएन्डला श्रीसंघ और चाचोरी श्रीसंघ की तरफ से एकेक रुपैया की प्रभावना घर दीठ हुई। स्थायी संघ की ओर से भी सुबह और स्याम को प्रभावना हुई। प्रवेश प्रसंग के उपलक्ष में संघ में से १२५ उपरान्त मंगलकारी आयंबिल हुए। एक बृहद्शान्तिस्नात्र युक्त अष्टाह्निका महोत्सव पूर्ण हुआ और दूसरा श्री सिद्धचक्र-महापूजन युक्त अष्टाह्निका महोत्सव का प्रारम्भ हुआ ।

[२]

चातुर्मास स्थित परमपूज्य आचार्य महाराजादि के शुभनाम

(१) परमपूज्य आचार्यप्रवर श्रीमद् विजयसुशीलसूरीश्वरजी म० सा० ।

(२) परमपूज्य आचार्य श्रीमद्विजयविकासचन्द्रसूरीश्वरजी म० सा० ।

(३) परमपूज्य उपाध्याय श्रीविनोदविजयजीगणिवर्य म. सा० ।

(४) पूज्य मुनिराजश्री रत्नशेखरविजयजी म० सा० ।

(५) पूज्य मुनिराजश्री शालिभद्रविजयजी म० सा० ।

(६) पूज्य मुनिराजश्री जिनोत्तमविजयजी म० सा० ।

(७) पूज्य मुनिराजश्री अरिहंतविजयजी म० सा० ।

पू० साध्वीजी महाराज के शुभनाम

परमपूज्य शासनसम्राट् समुदाय की आज्ञानुवर्त्तिनी--

(१) पू० सा० श्री कान्तगुणाश्रीजी म० ।

(२) पू० सा० श्री धर्मिष्ठाश्रीजी म० ।

(३) पू० सा० श्री विचक्षणाश्रीजी म० ।

(४) पू० सा० श्री कल्पगुणाश्रीजी म० ।

(५) पू० सा० श्री चन्द्रपूर्णाश्रीजी म० ।

(६) पू० सा० श्री इन्द्रयशाश्रीजी म० ।

(७) पू० सा० श्री महाभद्राश्रीजी म० ।
(८) पू० सा० श्री कीर्त्तिसेनाश्रीजी म० ।
(६) पू० सा० श्री महानन्दाश्रीजी म० ।
(१०) पू० सा० श्री भव्यपूर्णाश्रीजी म० ।
(११) पू० सा० श्री तत्त्वरुचिश्रीजी म० ।

शासनप्रभावक परमपूज्य आचार्यवर्य श्रीमद्विजय मंगलप्रभसूरीश्वरजी म० सा० की आज्ञानुवर्त्तिनी-

(१) पू० सा० श्री ज्ञानश्रीजी म० ।
(२) पू० सा० श्री गुणप्रभाश्रीजी म० ।
(३) पू० सा० श्री आनन्दश्रीजी म० ।
(४) पू० सा० श्री कुसुमप्रभाश्रीजी म० ।
(५) पू० सा० श्री किरणमालाश्रीजी म० ।
(६) पू० सा० श्री चन्द्रकलाश्रीजी म० ।
(७) पू० सा० श्री यशपूर्णाश्रीजी म० ।
(८) पू० सा० श्री जयप्रज्ञाश्रीजी म० ।
(६) पू० सा० श्री मुक्तिप्रियाश्रीजी म० ।

पूज्य साध्वी श्री सुशीलाश्रीजी म० की शिष्या-

(१) पू० सा० श्री भाग्यलताश्रीजी म० ।
(२) पू० सा० श्री भव्यगुणाश्रीजी म० ।
(३) पू० सा० श्री दिव्यप्रज्ञाश्रीजी म० ।
(४) पू० सा० श्री शीलगुणाश्रीजी म० ।

शासनप्रभावक परमपूज्य आचार्यवर्य श्रीमद् विजय-धर्मसूरीश्वरजी म. सा. की आज्ञानुवर्तिनी

(१) पू० सा० श्री कुमुदप्रभाश्रीजी म० ।
(२) पू० सा० श्री कल्पलताश्रीजी म० ।
(३) पू० सा० श्री जयपूर्णाश्रीजी म० ।
(४) पू० सा० श्री कल्पपूर्णाश्रीजी म० ।
(५) पू० सा० श्री सौम्यरसाश्रीजी म० ।
(६) पू० सा० श्री प्रियज्ञाश्रीजी म० ।
(७) पू० सा० श्री हितज्ञाश्रीजी म० ।
(८) पू० सा० श्री कल्परत्नाश्रीजी म० ।
(९) पू० सा० श्री कल्पधर्माश्रीजी म० ।

शासनप्रभावक परमपूज्य आचार्यवर्य श्रीमद् विजय-हिमाचलसूरीश्वरजी म० सा० की आज्ञानुवर्तिनी--

(१) पू० सा० श्री दर्शनश्रीजी म० ।
(२) पू० सा० श्री ······ जी म० ।

त्रिस्तुति वाले—

(१) पू० सा० श्री प्रेमलताश्रीजी म० ।
(२) पू० सा० श्री पूर्णकिरणाश्रीजी म० ।

इस तरह चातुर्मास में साधु--साध्वीओं की कुल संख्या ४४ की थी ।

[३]

卐 श्री सिद्धचक्रमहापूजन 卐

चालु अष्टाह्निका-महोत्सव में प्रतिदिन व्याख्यान में तथा प्रभु की पूजा में प्रभावना होती रही। श्रावण (अषाढ) वद ३ गुरुवार के दिन श्रीसंघ की ओर से **श्री सिद्धचक्र महापूजन** विधिकारक श्री बाबुभाई मणीलाल मास्टर (भाभरवाले) वाले ने विधिपूर्वक सुन्दर पढ़ाया।

[४]

卐 श्री जैन धार्मिक पाठशाल का उद्घाटन 卐

प० पू० आ० श्रीमद्विजयसुशीलसूरीश्वरजी म० सा० के सदुपदेश से **'श्री जैन धार्मिक पाठशाला'** का फण्ड हुआ और श्रावण (अषाढ) वद ५ शनिवार से उसीका उद्घाटन भी हुआ। प्रतिदिन प्रभावना युक्त प्रभु की पूजा का कार्यक्रम चालु रहा।

प्रतिदिन व्याख्यानादिक का लाभ श्रीसंघ को सुन्दर मिलता रहा और पू० साधु--साध्वीओं को श्रीदशवैकालिक सूत्र आदि की वांचना का लाभ भी मिलता रहा।

[५]

ॐ पू० श्री भगवतीजीसूत्र का और श्रीयुगादि-देशना का प्रारम्भ ॐ

श्रावण शुद ३ शुक्रवार के दिन सूत्र की उछामणी बोलकर शा. शेषमल चमनाजी अचलाजी अपने घर पर सूत्र को जुलूस द्वारा ले जाकर रात्रिजागरण प्रभावना युक्त किया।

श्रावण शुद ४ शनिवार के दिन अपने घर से जुलुस द्वारा लाकर उपाश्रय में पूज्यपाद आचार्य म. को संघ की समक्ष सूत्र को वहोराया। प्रथम पूजन गीनी से शा. प्रेमचन्द मनरुपजी ने किया। चार पूजन अन्य अन्य गृहस्थोंने क्रमशः रुपानाणा से करने के पश्चाद् सकल संघने भी रुपानाणा से पूजन किया। **'पूज्य श्री भगवतीजी सूत्र'** का प्रारम्भ पूज्यपाद् आचार्यदेव श्रीमद् विजयसुशीलसूरीश्वरजी म. सा. ने किया। द्वितीय व्याख्यान में **'श्रीयुगादिदेशना'** का प्रारम्भ पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजयविकासचन्द्रसूरिजी म. सा. ने किया। प्रातः सर्वमङ्गल के पश्चाद् प्रभावना हुई। दुपहर में पैंतालीस आगम की पूजा प्रभावना युक्त पढाई गई। प्रतिदिन प्रभावना युक्त पूजा का कार्यक्रम चालु रहा। प. पू. आचार्य श्रीमद्विजयविकासचन्द्रसूरिजी म. द्वारा व्याख्यान का भी लाभ प्रतिदिन संघ को मिलता रहा।

[६]

◆ चतुर्विध संघ में विविध तपश्चर्या. ❖

(१) पूज्य मुनिराज श्री जिनोत्तमविजयजी म. सा. ने श्री महानिशिथ सूत्र के योग किया।

(२) पूज्य मुनिराज श्री अरिहंतविजयजी म. सा. ने श्री वर्द्धमानतप की १५ वीं ओली की।

(३) पूज्य साध्वी श्री विचक्षणाश्रीजी म. ने अट्ठाई (आठ उपवास) तप किया।

(४) पूज्य साध्वी श्री भाग्यलताश्रीजी म. ने चातुर्मास दरम्यान बारह उपरान्त अट्ठम किये।

(५) पूज्य सा. श्री आनन्दश्रीजी म. ने ५०० आयंबिल चालू।

(६) पूज्य सा. श्री किरणमालाश्रीजी म. ने ५०० आयंबिल चालू

(७) पूज्य सा. श्री जयप्रज्ञाश्रीजी म. ने ५०० आयंबिल चालू।

(८) पूज्य साध्वी श्री भव्यगुणाश्रीजी म. ने श्रीवीशस्थानक तप की १६ वीं ओली की।

(९) पूज्य साध्वी श्री दिव्यप्रज्ञाश्रीजी म. ने श्री वर्द्धमान तप की ३४ वीं ओली की।

(१०) पूज्म साध्वी श्री शीलगुणाश्रीजी म. ने श्री वर्द्धमान तप की ३३ वीं ओली की। तदुपरांत अट्ठाई भी की।

(११) पूज्य साध्वी श्री कुसुमप्रभाश्रीजी म. ने ९ उपवास का तप किया।

(१२) पूज्य साध्वी श्री प्रेमलताश्रीजी म. ने ५ उपवास की तपश्चर्या की ।

(१३) पूज्य साध्वी श्री कीर्त्तिसेनाश्रीजी म. ने श्री आचारांग सूत्र के योग किये ।

(१४) पूज्य साध्वी श्री भव्यपूर्णाश्रीजी म. ने श्री उत्तराध्ययन सूत्र के और श्री आचारांग सूत्र के योग किये ।

(१५) पूज्य साध्वी श्री तत्त्वरुचिश्रीजी म. ने श्री उत्तराध्ययन सूत्र के और श्री आचारांग सूत्र के योग किये ।

(१६) पूज्य साध्वी श्री कल्पधर्माश्रीजी म. ने बडी दीक्षा के योग किये ।

चतुर्विध संघ में—

(१) श्री नमस्कार महामन्त्र के नौ दिन के एकासणें पू. साधु-साध्वी म. उपरान्त ९५ भाई-बहिनों ने किये । उनके उपलक्ष में आराधक भाई-बहिनों की ओर से श्रावण शुद ६ सोमवार को ९९ अभिषेक की पूजा प्रभावना युक्त पढ़ाई गई । नवे दिन के एकासणां कराने की व्यवस्था संघ की तरफ से संघ के रसोड़े में की गई ।

(२) श्रावण शुद ७ मंगलवार के दिन सुबह व्याख्यान में गुढाबालोतान जैन छात्रावास मण्डली का कार्यक्रम रहा ।

दुपहर में शासनसम्राट् समुदाय की स्वर्गीय पू. सा. श्री कीर्त्तिश्रीजी म. की छट्ठी स्वर्गवास तिथि निमित्ते

पू. सा. श्री कल्पगुणाश्रीजी म. के उपदेश से सुरत निवासी शा. जयन्तिलाल मफतलाल तथा कुमुद बहिन मगनलाल झवेरी की तरफ से '**श्री वीशस्थानक महापूजन**' पढ़ाया गया ।

(३) एक पंचरंगी तप के पारणां शा. मगराज कस्तूरजी की ओर से और दूसरी पंचरंगी तप के पारणां शा. हजारीमल चमनाजी पावटावाला की तरफ से हुए ।

(४) नवरंगी तप की भी आराधना सुन्दर हुई ।

(५) श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ के अट्ठम तप, श्री गौतमस्वामीजी के छठ तप की तथा श्री दीपक तप की आराधना भी सोत्साह हुई । श्री वर्द्धमान तप और श्री वीशस्थानक तप में अनेक तपस्वीओं के नम्बर लगने पर श्रेणीतप में भी एक बहिन का नम्बर लगा ।

श्री पर्युषणामहापर्व में उपवास वाले—

१५	९	८	७	६	५	४	३	२	१
२	९	११	१०	१०	११	९	२५	५०	१०८

उपरान्त संख्या थी । चौसठ प्रहरी पौषध वाले चालीश संख्या में थे । श्रीसिद्धचक्र महापूजन युक्त अष्टाह्निका महोत्सव श्रीसंघ की ओर से हो जाने के पश्चात् प्रतिदिन पूजा प्रभावना का कार्यक्रम भादरवा (श्रावण) वद बारस तक भिन्न भिन्न सद्गृहस्थों की तरफ से चालू रहा ।

[७]

श्री पर्युषणा महापर्व में 'अष्टाह्निका-महोत्सव' पूजा प्रभावना युक्त शा. वीरचन्द सांकलचन्द एण्ड कम्पनी की ओर से रहा।

श्री पर्युषणा महापर्व की आराधना शासनप्रभावना पूर्वक प. पू. आचार्यप्रवर श्रीमद्विजयसुशीलसूरीश्वरजी म. सा. की शुभ निश्रा में सुन्दर हुई।

[अगवरी में प. पू. आ. श्रीमद्विजयविकासचन्द्रसूरिजी म. सा. की शुभ निश्रा में श्री पर्युषण महापर्व की आराधना अच्छी हुई।]

भादरवा शुद ५ मंगलवार के दिन तपस्वीओं के तथा गरम पानी पीने वाले तक के पारणे गुडाबालोतान निवासी शा. सोहनराज धनरूपजी की तरफ से हुए।

रथ, इन्द्रध्वज, पालखी, हाथी, घोड़े, मोटर तथा दो बेन्ड आदि युक्त जुलूस (वरघोडा) शानदार निकला। भादरवा शुद आठम तक व्याख्यान में और प्रभु की पूजा में प्रभावना का कार्यक्रम चालू रहा।

[८]

卐 वन्दनार्थे आये हुए अनेक संघ 卐

(१) अगवरी संघ वन्दनार्थे आकर घर दीठ एक रुपये की प्रभावना की ।

(२) दयालपुरा का संघ वन्दनार्थे आकर प्रभावना की ।

(३) अगवरी से शा. जयन्तिलाल रकबीचन्द वन्दनार्थे आकर घर दीठ एक रुपये की प्रभावना की ।

(४) चाणोद संघ की एक बस वन्दनार्थे आकर घर दीठ एक रुपये की प्रभावना की ।

(५) तखतगढ का संघ वन्दनार्थे आकर घर दीठ एक रुपये की प्रभावना की ।

(६) वलदरा का संघ वन्दनार्थे आकर घर दीठ एक रुपये की प्रभावना की ।

(७) रानी स्टेशन तथा रानी गांव का संघ वन्दनार्थे आकर घर दीठ एक रुपये की प्रभावना की ।

चातुर्मास एवं श्री पर्युषण महापर्व की अनुपम आराधना और विविध तपश्चर्यादिक के उपलक्ष में श्री जिनेन्द्र भक्ति रूप पांच महापूजन तथा ९९ अभिषेक की पूजा युक्त ३५ दिन का महोत्सव उजवने का श्रीसंघ ने निर्णय किया । जिन का मंगलमय कार्यक्रम निम्नलिखित है ।

卐 पैंतीस (३५) दिन का महोत्सव का मंगलमय कार्यक्रम 卐

भाद्रपद शुक्ला ६ शनिवार दिनांक १-६-७६ को

महोत्सव का प्रारम्भ हुआ। पूज्य मुनिराज श्री जिनोत्तम विजयजी म. ने किये हुए श्री महानिशिथ सूत्र के योग की पूर्णाहुति निमित्त ९९ अभिषेक की पूजा, प्रभावना आंगी भावना–शा. केसरीमल, सीनालाल, ललितकुमार बेटा पोता रतनचन्दजी धूलाजी की तरफ से हुई। प. पू. आ. म. सा. चतुर्विध संघ के साथ शा. सोहनमल धनराजजी के वहां पर पधारे पुण्यप्रकाश और पद्मावती सुनाने के पश्चात् संघ पूजा हुई।

भाद्रपद शुक्ला ११ रविवार दिनांक २-६-७६ को

बारहव्रत की पूजा, प्रभावना, आंगी, भावना–शा. बाबूलाल, पूनमचन्द, चंपालाल, पुत्र शा. रतनचन्दजी लूम्बाजी की तरफ से हुई।

भाद्रपद शुक्ला १२ सोमवार दिनांक ३-६-७६ को

पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजयसुशीलसूरीश्वरजी म. सा. का जन्म दिन यानि ६३ वाँ वर्ष में प्रवेश निमित्त श्री भक्तामर महापूजन, प्रभावना, आंगी, भावना तथा स्वामी वात्सल्य श्री जैनसकल संघ गुडाबालोतरा की तरफ से हुए।

भाद्रपद शुक्ला १३ मंगलवार दिनांक ४-९-७९ को

पैंतालीस आगम की पूजा, प्रभावना, आंगी, भावना–शा. ओटरमल, पारसमल, कुन्दनमल पुत्र आईदानमलजी भीमाजी की तरफ से हुई।

भाद्रपद शुक्ला १४ बुधवार दिनांक ५-९-७९ को

परमपूज्य आचार्यवर्य श्रीमद् विजय दत्तसूरीश्वरजी म. सा. का जन्म दिन यानि ६८वां वर्ष में प्रवेश निमित्त श्री वीशस्थानक की पूजा, प्रभावना, आंगी, भावना–शा. सरेमल देवीचन्द, हसमुखकुमार, फूलचन्द, भीकमचन्द, प्रवीणकुमार, संजयकुमार, बेटा पोता वरदीचन्दजी धुलाजी की तरफ से हुई।

भाद्रपद शुक्ला १५ गुरुवार दिनांक ६-९-७९ को

प.पू. आचार्य श्रीमद् विजयमंगलप्रभसूरीश्वरजी म. सा. की आज्ञानुवर्त्तिनी पू. साध्वी श्री ज्ञानश्रीजी म. की शिष्या पू. साध्वी गुणप्रभाश्रीजी म. की शिष्या पू. साध्वी कुसुमप्रभाश्रीजी म. ने की हुई ९ उपवास की तपश्चर्या निमित्त ९९ प्रकारी पूजा, प्रभावना, आंगी, भावना नव उपवास करने वाली बहिनों की तरफ से हुई।

आश्विन (भाद्रपद) कृष्णा १ शुक्रवार दिनांक ७-९-७९ को

श्री अर्हद् अभिषेक पूजन, प्रभावना, आंगी, भावना, स्व. सुमतिबाई की पुण्य स्मृति में शा. खीमचन्द, मोतीलाल,

रमेशकुमार, नरेन्द्रकुमार, सुरेशकुमार, मनोजकुमार, प्रितम-कुमार, बेटा पोता गुणेशकुमार चन्दाजी की तरफ से हुई ।

आश्विन (भाद्रपद) कृष्णा २ शनिवार दिनांक ८-६-७६ को

वेदनीय कर्म निवारण की पूजा, प्रभावना, आंगी, भावना शा. चेलाजी, मगराज, चन्दुलाल, दिलीपकुमार, राजेशकुमार बेटा पोता गेनाजी जसाजी की ओर से हुई ।

आश्विन (भाद्रपद) कृष्णा ४ रविवार दिनांक ६-६-७६ को

अन्तराय कर्म निवारण की पूजा, प्रभावना, आंगी, भावना शा. मगराज, किशोरकुमार, शंकरलालजी बेटा पोता कस्तूरजी खुशालजी की तरफ से हुई ।

आश्विन (भाद्रपद) कृष्णा ५ सोमवार दि० १०-६-७६ को

स्वर्गीय परमपूज्य आचार्यप्रवर श्रीमद् विजयलावण्य-सूरीश्वरजी म. सा. का जन्म दिन निमित्त श्री अष्टापदजी तीर्थ की पूजा, प्रभावना, आंगी, भावना शा. साँकलचन्द, रिखबचन्द, नेनमल, अमृतलाल बेटा पोता सोहनमल धुलाजी की ओर से हुई ।

आश्विन (भाद्रपद) कृष्णा ६ मंगलवार दि० ११-९-७९ को

अष्ट प्रकारी पूजा, प्रभावना, आंगी, भावना शा. सांकलचन्द, चुन्नीलाल, वीरचन्द, पुखराज, मोहनलाल,

अम्बालाल, भंवरलाल, जयन्तीलाल बेटा पोता सरूपजी पुनमचन्दजी की ओर से हुई ।

आश्विन भाद्रपद कृष्णा ७ बुधवार दि० १२-९-७१ को

श्री पंचतीर्थ की पूजा, प्रभावना, आंगी, भावना शा. चुन्नीलालजी, सांकलचन्द, राजेन्द्रकुमार, दिनेशकुमार, महेन्द्रकुमार बेटा पोता रुगनाथजी गोत्र दोलाणी की तरफ से हुई ।

आश्विन (भाद्रपद) कृष्णा ८ गुरुवार दि० १३-९-७१ को

प. पू. शासन सम्राट् समुदाय के आज्ञानुवर्त्तिनी स्वर्गीय प्रवर्त्तनी पू. साध्वी सौभाग्यश्रीजी म. की शिष्या स्वर्गीय पू. साध्वी गुणश्रीजी म. की शिष्या पू. साध्वी जिनेन्द्रश्रीजी म. की स्वर्गवास तिथि निमित्त पू. साध्वी धर्मिष्ठाश्रीजी म. पू. साध्वी विचक्षणाश्रीजी म. तथा पू. साध्वी महानन्दाश्रीजी म. के सदुपदेश से श्री ऋषि मण्डल महापूजन, प्रभावना, आंगी, भावना युक्त खम्भात वाले शा. मांगीलालजी के सुपुत्र नगीनभाई तथा बाबुभाई, शा. केशवलाल, बुलाखीदास, शा. कपूरचन्द मलुकचन्द के सुपुत्रों तथा मेना बहिन रतनलाल, जसी बहन बोटाद वाले की ओर से हुआ ।

आश्विन (भाद्रपद) कृष्णा ९ शुक्रवार दिनांक १४-९-७१ को

श्री नवपदजी की पूजा, प्रभावना, आंगी, भावना शा.

मेघराज, रतनचन्द, अम्बालाल, रमेशकुमार, सुरेशकुमार, अशोककुमार, राजेशकुमार बेटा पोता शा. मनरूपजी केनाजी गोत्र तोगाणी की तरफ से हुई ।

आश्विन (भाद्रपद) कृष्णा ६ शनिवार दिनांक १५-९-७९ को

प. पू. आचार्य श्रीमद् विजयमंगलप्रभसूरीश्वरजी म. सा. की आज्ञानुवर्तिनी पू. साध्वीजी सुशीलाश्रीजी म. की शिष्या पू. साध्वीजी भक्तिश्रीजी म. की शिष्या पू. साध्वी ललितप्रभाश्रीजी म. की शिष्या पू. साध्वी स्नेहलताश्रीजी म. की शिष्या पू. साध्वी भव्यगुणाश्रीजी म. की शिष्या पू. साध्वी दिव्यप्रज्ञाश्रीजी म. की शिष्या पू. साध्वी शीलगुणाश्रीजी म. ने की हुई अट्ठाई तप की तपश्चर्या निमित्त पू. साध्वी भाग्यलताश्रीजी के सदुपदेश से श्री पार्श्वनाथ पञ्चकल्याणक की पूजा, प्रभावना, आंगी, भावना शा. रीखबचन्दजी बापालाल, कान्तिलाल बेटा पोता खुमाजी खासवाला [हाल गुला वाला] की ओर से हुई ।

आश्विन भाद्रपद कृष्णा ११ रविवार दिनांक १६-९-७९ को

ज्ञानावरणीयकर्मनिवारण की पूजा, प्रभावना, आंगी, भावना, मिश्रीमल, जयन्तीलाल, मोहनलाल, दिनेशकुमार, राजेशकुमार, कीर्त्तिकुमार, किरणकुमार बेटा पोता भीक्खाजी अतमाजी की ओर से हुई ।

आश्विन (भाद्रपद) कृष्णा १२ [प्र.] सोमवार दि० १७-६-७६ को

दर्शनावरणीय कर्म निवारण की पूजा, प्रभावना, आंगी भावना शा. सरेमल, कुन्दनमल, किशोरमल, दिनेशकुमार बेटा पोता पुनमचन्दजी तीकमजी की ओर से हुई।

आश्विन (भाद्रपद) कृष्णा १२ [दूसरी] मंगलवार दि० १८-६-७६ को

वेदनीय कर्म निवारण की पूजा, प्रभावना, आंगी, भावना शा० सोहनलाल, भूरमल, मोहनलाल, भंवरलाल, महेन्द्रकुमार, नरेशकुमार, रमणलाल, मुकेशकुमार, जितेन्द्र-कुमार, ललितकुमार बेटा पोता धनरुपजी समस्त तोगाणी परिवार की तरफ से हुई।

आश्विन (भाद्रपद) कृष्णा १३ बुधवार दिनांक १६-६-७६ को

मोहनीय कर्म निवारण की पूजा-प्रभावना-आंगी-भावना शा. मिश्रीलाल, मीठालाल, जुगराज, जयन्तिलाल, महेन्द्र-कुमार, जवेरचन्द, रमेशकुमार, सुरेशकुमार, इन्दरमल, ललित-कुमार बेटा पोता जसाजी खुमाजी की ओर से हुई।

आश्विन (भाद्रपद) कृष्णा १४ गुरुवार दिनांक २०-६-७६ को

आयुष्यकर्म निवारण की पूजा-प्रभावन-आंगी-भावना शा० टीकमचन्द, वोरीलाल, जयन्तीलाल, चम्पालाल,

हिम्मतमल, सुरेशकुमार, अशोककुमार, संदीपकुमार बेटा पोता धुलाजी तोगाणी परिवार की ओर से हुई।

आश्विन (भाद्रपद) कृष्णा ०)) शुक्रवार दिनांक २१-६-७६ को

नामकर्म निवारण की पूजा-प्रभावना-आंगी-भावना शा. सरुपचन्दजी पोमाजी आहोर वाले की धर्मपत्नी बाई मगनी कासम गोत्र चौहाण की ओर से हुई।

आश्विन शुक्ला १ शनिवार दिनांक २२-६-७६ को

गोत्र कर्म निवारण की पूजा-प्रभावन-आंगी-भावना शा. मांगीलाल, केसरीमल, मन्छालाल, प्रवीणकुमार, राजेशकुमार, कमलेशकुमार बेटा पोता जुहारमलजी छोगाजी की तरफ से हुई.

आश्विन शुक्ला २ रविवार दिनांक २३-६-७६

प. पू. शासन सम्राट् समुदाय के आज्ञानुवर्त्तिनी स्वर्गीय प्रवर्त्तनी पू. साध्वी सौभाग्यश्रीजी म. के समुदाय की स्व० पू. साध्वी जिनेन्द्रश्रीजी म, स्व० पू. साध्वी कीर्त्ति-श्रीजी म. एवं स्व० पू. साध्वी जयप्रभाश्रीजी म. की पुण्य स्मृति निमित्त पू. साध्वी कल्पगुणाश्रीजी तथा पू. साध्वी इन्द्र-यशाश्रीजी म. के सदुपदेश से श्री चिन्तामणी पार्श्वनाथ पूजन सुरत निवासी शा. जयन्तिलाल मफतलाल की ओर से हुआ।

आश्विन शुक्ला ३ सोमवार दिनांक २४-९-७६ को

अन्तराय कर्म निवारण की पूजा-प्रभावना-आंगी-भावना शा. चिमनलाल, लेखराज, ललितकुमार, नितेशकुमार बेटा पोता नवाजी गोत्र कासम की तरफ से हुई।

आश्विन शुक्ला ४ मंगलवार दिनांक २५-९-७६ को

सत्तरह भेदी पूजा-प्रभावना-आंगी-भावना शा. भूरमल हजारीमलजी बागरा वालों की तरफ से हुई।

आश्विन शुक्ला ५ बुधवार दिनांक २६-९-७६ को

ज्ञानावरणीय कर्म निवारण की पूजा-प्रभावना-आंगी-भावना शा. नेमीचन्द नवलमलजी बेटा पोता नरसिंगजी, गोल गोता वास, गुडा बालोतान वालों की तरफ से हुई।

आश्विन शुक्ला ६ गुरुवार दिनांक २७-९-७६ को

आश्विन मास की शाश्वती [आयम्बिल] ओली का प्रारम्भ। दर्शनावरणीय की पूजा-प्रभावना-आंगी-भावना शा. पुखराजजी, किर्तीकुमार, भरतकुमार, पोपटलाल बेटा पोता चुन्नीलालजी वरदीया भाद्राजन वालों की तरफ से हुई।

आश्विन शुक्ला ७ शुक्रवार दिनांक २८-९-७९ को

वेदनीय कर्म निवारण की पूजा-प्रभावना-आंगी-भावना शा. संघवी दलीचन्दजी कपूरजी बेटा पोता अशोककुमार, सतीशकुमार, दयालपुरा वालों की तरफ से हुई।

आश्विन शुक्ला ८ शनिवार दिनांक २९-९-७९ को

मोहनीय कर्म निवारण की पूजा-प्रभावना-आंगी-भावना शा. फौजमलजी, सांकलचन्दजी, शान्तीलाल, पन्नालाल, भरतकुमार, महेन्द्रकुमार, दिनेशकुमार, बेटा पोता छोगाजी वास गुडा वालों की तरफ से हुई।

उपरोक्त महापूजनों तथा पूजाओं, पढाने वाले महानुभावों की ओर से निम्नलिखित कार्यक्रम है:-

आश्विन शुक्ला ९ रविवार दिनांक ३०-९-७९ को

आयुष्य कर्म निवारण की पूजा-प्रभावना-आंगी-भावना हुई।

आश्विन शुक्ला १० सोमवार दिनांक १-१०-७९ को

नाम कर्म निवारण की पूजा-प्रभावना-आंगी-भावना हुई।

आश्विन शुक्ला ११ मंगलवार दिनांक २-१०-७९ को

गोत्र कर्म निवारण की पूजा-प्रभावना-आंगी-भावना हुई।

आश्विन शुक्ला १२ बुधवार दिनांक ३-१०-७९ को

अन्तराय कर्म निवारण की पूजा-प्रभावना-आंगी-भावना हुई ।

आश्विन शुक्ला १४ गुरुवार दिनांक ४-१०-७९ को

श्री नवपदजी की पूजा-प्रभावना-आंगी-भावना हुई ।

आश्विन शुक्ला १५ शुक्रवार दिनांक ५-१०-७९ को

श्री सिद्धचक्र महापूजन प्रभावना—आंगी—भावना युक्त हुआ ।

इस तरह १५ दिन का महोत्सव अभूतपूर्व शासन प्रभावना पूर्वक हुआ ।

(१)

॥ श्री ऋषिमंडल महापूजन आहोर में ॥

आश्विन शुद ८ शनिवार दिनांक २९-९-७९ को प. पू. आ. **श्रीमद्विजय विकासचन्द्रसूरिजी म० सा०** पूज्य **उपाध्याय श्री विनोदविजयजी गणिवर्य म० सा०** तथा पू० **बालमुनि श्री जिनोत्तमविजयजी म० सा०** आदि आहोर पधारते श्रीसंघ की तरफ से जैन बेन्ड युक्त स्वागत हुआ । आयंबिल भवन का उद्घाटन होने के पश्चात्

मंगलिक प्रवचन हुआ और प्रभावना युक्त विधिपूर्वक श्री ऋषिमंडल महापूजन पढाया गया। इस प्रसंग पर गोदन से पू० पंन्यास श्री हेमप्रभविजयजी गणिवरादि भी पधारे थे। शाम को पूज्य आचार्य म० तथा पूज्य उपाध्यायजी म० आदि गुडाबालोतरा पधार गये।

(२)

उमेदपुर में धर्मशाला का खातमुहुर्त तथा शिलान्यास

आश्विन शुक्ला १० (विजयादशमी) सोमवार दिनांक १-१०-७६ को पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद्विजयसुशील-सूरीश्वरजी म० सा० पू० मुनि श्रीशालिभद्रविजयजी म० तथा पू० बालमुनि श्रीजिनोत्तमविजयजी म० आदि के साथ गुडाबालोतरा से अगवरी होकर उमेदपुर पधारे श्री उमेदपुर जैन छात्रावास की ओर से बेन्ड युक्त स्वागत किया गया।

प० पू० आ० म० सा० का प्रवचन होने के पश्चात् पूज्यपाद आचार्य म० सा० के सदुपदेश से होने वाली नूतन धर्मशाला का खातमुहूर्त तथा शिलान्यास आहोर वाले शा. हीराचन्द भगवानजी ने किया। उस समय प० पू० आ० म० के सदुपदेश से उन्होंने नूतन-

धर्मशाला का वरन्डा युक्त एक रूम अपनी तरफ से कराने की घोषणा की। श्री भीड़भंजन पार्श्वनाथ के मन्दिर में पंचकल्याणक पूजा प्रभावना युक्त पढायी गई। शाम को पू० आ० म० आदि गुडाबालोतरा पधार गये।

॥ अष्टाह्निका-महोत्सव ॥

कार्तिक (आश्विन) वद ११ मंगलवार दि० १६-१०-७९ को शा. हिम्मतमल पुखराज भीमाजी ने अपनी माताजी के श्रेयोऽर्थे **अष्टाह्निका-महोत्सव** का प्रारम्भ किया।

(१) दीपावली पर्व के उपलक्ष में छठ तप की आराधना चतुर्विध संघ में सुन्दर हुई।

(२) पू० बालमुनि श्री जिनोत्तमविजयजी म० सा० ने भी अट्ठम तप की पूर्णाहुति अमावस के दिन की। दीपावली के देववंदन भी हुए।

(३) अमावस्या के दिन सादडी वाले शा. मोहनराजजी तथा शा. विमलचन्दजी आदि वन्दनार्थ आकर व्याख्यान में संघपूजा तथा एकेक रुपये की प्रभावना की।

[३]

नूतनवर्ष का मंगलाचरण, जुलुस एवं पूजन

श्री वीर सं० २५०६ विक्रम सं० २०३६ नेमि सं० ३१ कात्तिक शुक्ला १ सोमवार नूतन वर्ष का प्रारम्भ ।

(१) प. पू. आ. श्रीमद्विजय सुशीलसूरीश्वरजी म. सा. ने **मंगलाचरण—मंगलप्रार्थना—श्री गौतमाष्टक** सुनाया ।

प. पू. आ. श्रीमद्विजय विकासचन्द्रसूरिजी म. सा. ने **श्री गौतमस्वामीजी का रास** सुनाया ।

प. पू. उपाध्याय श्री विनोदविजयी गणिवर्य म. सा. ने सातस्मरण सुनाया ।

पू. बालमुनि श्री जिनोत्तमविजयजी म. सा. ने **श्रीनेमि-सूरीश्वराष्टक** सुनाया । प्रभावना हुई । पश्चात्–

(२) प्रभु का रथ-पालखी-इन्द्रध्वज तथा बेन्ड युक्त जुलुस-वरघोडा निकला ।

(३) दोपहर में **श्री पार्श्वनाथ प्रभु के १०८ नाम का पूजन** पढाया गया और प्रभावना संघ की ओर से की गई । स्थापनाचार्य का भी विधियुक्त पूजन प. पू. आ. श्रीमद् विजयसुशीलसूरीश्वरजी म. सा. ने किया ।

[४]

तप की पूर्णाहुति के पारणे

(१) कार्तिक शुक्ला २ मंगलवार के दिन प. पू. आ. श्रीमद्-विजयसुशीलसूरीश्वरजी म. सा. की ४१ वीं श्री वर्द्धमान-तप ओली की पूर्णाहुति के पारणे के प्रसंग पर शा. टीमचन्द धुलाजी के वहां पर चतुर्विध संघ सहित प. पू. आ. म. सा. पधारे एवं मंगलिक प्रवचन सुनाया। ज्ञानपूजन के पश्चात् वहां पर प्रभावना हुई।

(२) प. पू. आ. श्रीमद्विजय विकासचन्द्रसूरिश्वरजी म. सा. ने भी पञ्चप्रस्थानमयसूरि मन्त्र की पहली और दूसरी ओली विधि पूर्वक पूर्ण करके पारणा किया।

(३) पू. मुनिराज श्री शालिभद्रविजयजी म. सा. ने भी श्रीवर्द्ध-मान तप की ११ वीं और १२ वीं ओली विधिपूर्वक पूर्ण करके पारणा किया।

उस दिन उमेदपुर से श्री पारसमलजी भंडारी उमेदपुर श्री जैनबालाश्रम की बेन्ड युक्त संगीत मण्डली लेकर आये और व्याख्यान में संगीत का प्रोग्राम किया। दोपहर में पूजा का कार्यक्रम चालू रहा।

[५]

ज्ञानपंचमी की आराधना–

प. पू. आ. म. सा. की शुभ निश्रा में कार्तिक शुद ५ शुक्रवार ज्ञानपंचमी की आराधना शणगारेल ज्ञानसमक्ष देववन्दन पूर्वक सुन्दर हुई। प्रवचन का लाभ प. पू. आ. श्रीविजयविकासचन्द्रसूरिजी म. सा. द्वारा श्रीसंघ को मिलता रहा। प्रभावना युक्त पूजा का भी कार्यक्रम चालू रहा।

[६]

थांवला गांव में पूजा तथा स्वामीवात्सल्य–

कार्त्तिक शुद ९ सोमवार दिनांक २९-१०-७९ को पूज्यपाद् आचार्यदेव श्रीमद् विजयसुशीलसूरीश्वरजी म. सा. चतुर्विध संघ युक्त गुडाबालोतान से थांवला गांव में पधारते हुए श्रीसंघ ने स्वागत किया। जिनमन्दिर के दर्शन बाद आ. म. सा. का प्रवचन हुआ। शा हीराचन्द चुनीलालजी तथा शा. लखमीचन्दजी.........के वहां पर चतुर्विध संघ युक्त प. पू. आ. म. सा. पधारे। ज्ञानपूजन और मांगलिक प्रवचन के पश्चात् प्रभावना हुई। जिनमन्दिर के सम्बन्ध में संघ को मार्गदर्शन देकर पूज्यपाद आचार्य म. सा. गुडाबालोतान पधार गये।

[७]

चौमासी चौदश की आराधना-

प. पू. आ. म. स. की पावन निश्रा में चौमासी चौदश की आराधना चतुर्विध संघने देववन्दन युक्त सुन्दर की। चौमासी व्याख्यान का भी लाभ श्रीसंघ को अच्छा मिला।

[८]

चातुर्मास परावर्तन-

कार्त्तिक शुद १५ रविवार दिनांक ४-११-७६ को प. पू० आ. म. सा. आदि सभी मुनिवृन्द का तथा पू. साध्वी समुदाय का चातुर्मास परावर्तन बेन्ड युक्त श्री संघ की तरफ से हुआ। तीन जिनमन्दिर में तथा जैन छात्रावास के जिनालय में भी प्रभावना युक्त पूजा का कार्यक्रम रहा। श्री सिद्धाचल महातीर्थ के पट्टदर्शन तथा २१ खमासमण का भी कार्यक्रम सोत्साह रहा। रथ, इन्द्रध्वज, पालखी तथा बेन्ड युक्त वरघोडा श्रीसंघ की ओर से निकला।

[६]

मागसर (कार्त्तिक) वद १ सोमवार दिनांक ४-११-७६ को सुबह पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद्विजयसुशीलसूरीश्वरजी म. सा. पूज्य बालमुनि श्री जिनोत्तमविजयजी म. आदि

सहित अगवरी गांव में पधारते हुए श्रीसंघने सोत्साह स्वागत किया, प्रवचन के पश्चात् प्रभावना हुई। पुनः पू. आ. म. सा. गुडाबालोतान पधार गये।

[१०]

श्री भक्तामर महापूजन

मागशर (कात्तिक) वद् मंगलवार दिनांक ६-११-७६ को परमपूज्य आचार्यदेव श्रीमद्विजयसुशीलसूरीश्वरजी म. सा. ने अपनी दीक्षा पर्याय के ४८ वर्ष पूर्ण करके ४६ वें वर्ष में प्रवेश किया। श्री जैन छात्रावास में चालु पञ्चाह्निका महोत्सव में 'श्री भक्तामर महापूजन' श्री गोविंदचन्दजी गृहपति तथा छात्रावास के विद्यार्थियों ने एवं विधिकारक धार्मिक शिक्षक श्री बाबूलाल मणीलाल भाभरवाले ने छात्रावास की तरफ से ठाठमाठ पूर्वक सुन्दर पढाया।

पूज्यपाद आचार्यदेव के सदुपदेश से छात्रावास के जिनालय में प्रतिदिन सुबह जिनस्नात्र पढ़ाने की उद्-घोषणा गृहपति श्री गोविंदचन्दजी महेता ने की। सबको आनन्द हुआ। प्रातः प्रभावना हुई।

[११]
पूज्य श्री भगवती सूत्र के प्रथम शतक की पूर्णाहुति आदि–

मागशर (कार्त्तिक) वद ५ गुरुवार दिनांक ८-११-७६ को व्याख्यान में पूज्य श्री भगवती सूत्र के प्रथम शतक की पूर्णाहुति हुई। पूर्ववत् गीनी आदि के पांच पूजन प्रभावना, जुलूश तथा ४५ आगम की पूजा का भी कार्यक्रम रहा।

[१२]
गुडाबालोतान से जवाली तरफ विहार–

(१) मागशर (कार्त्तिक) वद ६ शनिवार दिनांक १०-११-७६ को पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद्विजयसुशील-सूरीश्वरजी म. सा., पूज्यपाद आचार्य श्रीमद्विजयविकास-चन्द्रसूरिजी म. सा. तथा पूज्य उपाध्याय श्री विनोदविजयजी गणिवर्य म. सा. आदि सुबह गुडाबालोतान से विहार करते समय श्री जैन संघ और गुडा श्री जैन छात्रावास का बेन्ड तथा सब विद्यार्थियों को . पू. आ. म. सा. ने मंगल प्रवचन सुनाया और सबको भिन्न भिन्न प्रतिज्ञा करवाई। पश्चात् श्रीसंघ ने अश्रुधारा नयनों से विदायगिरि देते हुए पू. आचार्य महाराजादि मुनिमण्डल सहित अगवरी और उमेदपुर तरफ विहार किया।

अगवरी पधारते हुए श्रीसंघ ने बेन्ड युक्त स्वागत किया और मंगल प्रवचन के पश्चात् प्रभावना की। वहां से उमेदपुर पधारते हुए श्री जैन बालाश्रम के विद्यार्थियों ने बेन्ड युक्त श्रीसंघ के उत्साह के साथ प. पू. आ. म. आदि मुनि समुदाय का स्वागत किया। प्रवचन के प्रश्चात् गुडाबालोतान् संघ की ओर से श्रीभीडभंजन पार्श्वनाथ जिनमन्दिर में श्री पार्श्वनाथ प्रभु की पंचकल्याण पूजा पढाई गई और स्वामीवात्सल्य भी हुआ।

परमपूज्य आ. म. सा. के उपदेश से उमेदपुर में बन रही जैन धर्मशाला में अगवरी निवासी शा. ताराचन्दजी के सुपुत्र श्री हिम्मतमलजी ने अपनी ओर से एक कमरा बनाने का जाहेर किया। प. पू. आ. म. सा. के साथ इस प्रसंग पर तपस्वी पू. पंन्यासश्रीभुवनविजयजी म. सा. का सुभग संमिलन हुआ।

(२) मागशर (कार्त्तिक) वद ७ रविवार दिनांक ११-११-७९ को प. पू. आ. म. सा. आदि सुबह उमेदपुर से विहार कर तखतगढ में पधारते हुए श्रीसंघ ने बेन्ड युक्त स्वागत किया। व्याख्यान के पश्चात् प्रभावना की।

(३) मागशर (कार्त्तिक) वद ८ सोमवार दिनांक १२-११-७९ को सुबह तखतगढ से विहार कर कोसीलाव

पधारते हुए प० पू० आ० म० सा० आदि का श्रीसंघ ने स्वागत किया। प्रवचन के पश्चात् प्रभावना हुई। दुपहर में श्री शान्तिनाथ जिनमन्दिर में पंचकल्याण पूजा प्रभावना युक्त पढाई गई।

(४) मागशर (कात्तिक) वद ९ मंगलवार दिनांक १३-११-७९ को कोसीलाव से सुबह विहार कर खिमाडा में जिनमन्दिर तथा गुरुमन्दिर का दर्शन करके **विरामी** पधारे। पूज्यपाद आचार्यदेव का व्याख्यान हुआ। दूसरे दिन भी स्थिरता हुई।

(५) मागशर (कात्तिक) वद ११ गुरुवार दिनांक १५-११-७९ को विरामी से **चाचोरी** पधारते हुए श्री संघने दोनों प० पू० आ० म० सा० आदि का स्वागत किया। पूज्य आचार्य श्रीमद्विजय विकासचन्द्रसूरि म० सा० का प्रवचन के पश्चात् प्रभावना हुई। दुपहर में श्री भभुतमलजी के घर पर दोनों आ० म० आदि के पगलां होने के पश्चात् संघ पूजा हुई। श्री तेजराजजी और श्री चमनमलजी के घर पर भी पगलें और प्रभावना हुई। जिनमन्दिर में प्रभावना युक्त पूजा का कार्यक्रम चालु रहा।

(६) मागर (कात्तिक) वद १२ शुक्रवार दिनांक १६-११-७९ को चाचोरी से श्री नादाणा तीर्थ पधारते हुए पेढी की ओर से प० पू० आ० म० आदि का स्वागत हुआ।

(७) जवाली :–

शा. मूलचन्द गेनमलजी सोनिमलिया द्वारा-आयोजित श्री वरकाणा-राणकपुर आदि तीर्थ का छरि पालित (पद यात्री) संघ प्रयाण निमित्त-मागशर (कार्तिक) वद-१३ शनिवार दिनांक १७-११-७९ को पूज्यपाद श्री का मंगल प्रवेश तथा श्री सिद्धचक्र-महापूजन युक्त अष्टाह्निका महोत्सव का मंगल प्रारम्भ हुआ।

मागशर सुद-५ शनिवार दि. २४-११-७९ को श्री सिद्धचक्र महापूजन तथा मागशर सुद-६ रविवार दि. २५-११-७९ को श्री वरकाणा-राणकपुर आदि पंचतीर्थी का 'छरी' पालित संघ का मंगल प्रयाण हुआ।

यह संघ जवाली से नादणा (विजोवा) वरकाणा, नाडोल, नारलाई, सुमेर, देसुरी, घाणेराव) मुछाला महावीर (कीर्तिस्थम्भ छोडा, सादडी होते हुए राणकपुर प्रवेश, वहां पोष (मागसर) वद-२ बुधवार दि. ५-७९ को तीर्थ माला इस भव्य पदयात्री संघ में प. पू. आचार्य गुरु भगवन्त के साथ समर्थ प्रवचनकार पू० आचार्य प्रवर श्रीमद् विजय विकाशचन्द्रसूरीश्वरजी म. सा. मधुर भाषी पू. उपाध्याय श्री विनोदविजयजी गणिवर्य म. सा. तथा विद्वद्वर्य प. पू. उपाध्याय श्री मनोहरविजयजी गणिवर्य म. सा. (अभि-

नवाचार्य श्री मनोहरसूरिजी म. सा.) अदि ठाणा-१३, तथा ३५ साध्वीजी एवं करीब ६०० यात्री थे, संघपति की उदारता एवं व्यवस्था प्रशंसनीय थी। 'प्रत्येक स्थल में व्याख्यान-पूजा-प्रभावना तथा स्वामीवात्सल्य आदि का प्रोग्राम शानदार रहा। घाणेराव में श्री नाकोडा तीर्थोद्धारक प. पू. आ. श्रीमद्विजय हिमाचलसूरीश्वरजी म. आदि का संमिलन हुआ।

(२) **शिवगंज–**

धर्मनिष्ठ-विधिकारक शा राजमलजी सागरमलजी की ओर से श्री उद्यापन श्री सिद्धचक महापूजन-श्री वीशस्थानक महापूजन युक्त महोत्सव के निमित्त पोस (मागशर) वद ७ मंगलवार दिनांक ११-१२-७६ को शिवगंज में भव्य नगर प्रवेश हुआ था।

उद्यापन–दो महापूजन युक्त उपरोक्त महोत्सव शानदार संपन्न हुआ।

(६) **खिवान्दी–**

पोस शुद ६ गुरुवार दिनांक २७-१२-७६ को बिजापुर निवासी ध्वज केशरी शा. शेषमलजी सत्तावत को श्री वर्धमान तप की ६६ वीं ओली का अनुमोदनीय पारणा पू. आचार्य भगवन्त श्री की निश्रा में खिवान्दी निवासी एक

भाई ने बोली बोलकर करवाया। उस दिन पूजा आदि का भी विशिष्ट कार्यक्रम रखा गया।

(१०) तखतगढ–

पोष शुद १० शुक्रवार दिनांक २८-१२-७६ को तखतगढ में भव्य प्रवेश एवं वहां बिराजमान शांत स्वभावी पू. पंन्यासप्रवर श्री हेमप्रभविजयजी गणिवर्य म. आदि का संमिलन हुआ। पू. मुनि श्री सत्यविजयजी म. तथा पू. मुनि श्री लक्ष्मीविजयजी म. आदि का भी संमिलन हुआ।

संघवी श्री चुन्नीलाल वीशाजी के घर पगला होने के पश्चात् उसी दिन शा. सांकलचन्दजी दानजी के घर पद्मावती सुनाने के बाद उन्होंने करिब ४। (सवा चार लाख) की रकम शुभ खाते में घोषित की। प. पू. आ. म. सा. का दोपहर में जाहेर व्याख्यान दो दिन रहा। विद्वान् पू. मणिप्रभविजयजी म. का भी साथ में।

(११) श्री नाकोडा तीर्थ–

महाचमत्कारी-राजस्थान का गौरव संपन्न श्री नाकोड़ा पार्श्वनाथ जैन तीर्थ पर तखतगढ निवासी संघवी श्री चुन्नीलाल वीशाजी द्वारा आयोजित श्री उपधान तप के मंगल प्रसंग पर महा शुद ५ मंगलवार दिनांक २२-१-८० को शानदार प्रवेश हुआ।

उस समय वहां बिरामान पंजाब देशोद्धारक प. पू. आचार्य देव श्रीमद्विजय आत्म-वल्लभ ललितसूरीश्वरजी म. सा. के पट्टासीन परमार क्षत्रियोद्धारक प. पू. आचार्य देव श्रीमद्विजय इन्द्रदिन्नसूरीश्वरजी म. सा. आदि ठाणा-२४ का सुभग संमिलन हुआ। साथ ही चातुर्मास हेतु अनेक क्षेत्रों की विनंती होने पर भी पू. आचार्य गुरुभगन्त की जन्मभूमि चाणस्मा (गुज.) में चातुर्मास की स्वीकृति दी गई।

महा शुद १३ बुधवार दिनांक ३०-१-८० को उपधान तप का शुभारम्भ हुआ, एवं चैत्र शुद १ सोमवार दिनांक १७-३-८० को मालारोपण हुआ।

इस उपधान तप के शुभ प्रसंग पर वहां पधारे हुये विद्ववर्य समर्थवक्ता प. पू. आचार्यदेव श्रीमद्विजयभुवन-शेखरसूरीश्वरजी म. सा. तथा सेवाभावी पू. मुनि श्री महिमा-विजयजी म. आदि ने भी उपधान में कराने वाले श्रेष्ठि की विनंति से वहां स्थिरता की। प्रतिदिन दोनों आ. म. सा. के व्याख्यान का लाभ जनता को मिला।

मालारोपण के शुभ प्रसंग पर श्री २१ छोड के उद्यापन सहित श्री चिंतामणी पार्श्वनाथ महापूजन श्री सिद्धचक्र पूजन युक्त दशाह्निका महामहोत्सव संघवी श्री चुन्नीलाल वीशाजी की ओर से मनाया गया।

इस प्रसंग पर संघवीजी की ओर से पू. आ. म. सा. द्वारा लिखी हुई "श्री उपधान तप आराधना मार्गदर्शिका" नाम की सुन्दर पुस्तक प्रकाशित की गई ।

श्री नाकोडाजी तीर्थ पर तपागच्छ का प्रथम उपधान भवोदधितारक पू. आचार्य गुरुदेवश्री की निश्रा में अभूतपूर्व-परमशासन प्रभावना पूर्वक सुसंपन्न हुआ ।

(१२) लेटा (जिला-जालोर)–

चैत्र शुद १३ शनिवार दिनांक २६-३-८० को श्री महावीर जन्म कल्याणक का भव्य आयोजन तथा श्री शान्तिनाथ जिन मन्दिर तथा श्री श्रेयांसनाथ जिन मन्दिर इन दोनों जिन मन्दिरों में प्रतिष्ठा निमित्तक पत्रिका में जय-जिनेन्द्र फलेचुंदडी, स्वामीवात्सल्य, पूजा आदि की बोलियां बोली गई थी, जो अकल्पनीय हुई ।

(१३) वादणवाडो (जिला-जालोर)–

चैत्र शुद १५ सोमवार दिनांक ३१-३-८० को संघवी मानमल श्रीचन्दाजी की ओर से अष्टोत्तरी शांति स्नात्र पढाया गया, तथा वैशाख (चैत्र) वद २ बुधवार दिनांक २ ४-८० को शासनसम्राट् समुदाय की आज्ञानुवर्त्तिनी तपस्विनी पू. साध्वी पुण्यप्रभाश्रीजी की शिष्या पू. साध्वी श्री रत्नप्रभाश्रीजी के श्री वर्धमान तप की ७३ वीं ओलि का पारणा हुआ ।

(१४) अगवरी (जिला-जालोर) :-

शासन प्रभावक प० पू० आचार्यदेव श्रीमद्‌विजय मंगलप्रभसूरीश्वरजी म. सा. की आज्ञानुवर्त्तिनी पू० साध्वी श्री सुशीला श्री जी की शिष्या तपस्विनी पू० साध्वी श्री भाग्यलता श्रीजी के १०८ अट्ठम उपरांत ९ उपवास की तपस्या के निमित्ते अगवरी श्री संघ द्वारा आयोजित श्री ३१ छोड के उद्यापन सहित श्री भक्तामर पूजन, पार्श्वनाथ भगवन्त के १०८ अभिषेक पूजन, नव्वाण अभिषेक की बडी पूजा, श्री बृहद् अष्टोत्तरी शान्ति स्नात्र युक्त श्री अष्टान्हिका महा-महोत्सव का वैशाख (चैत्र) वद ९ बुधवार दिनांक ९-४-८० को शुभारंभ एवं पूज्यपाद श्री का नगर प्रवेश हुआ।

वैशाख सुद ३ गुरुवार दिनांक १७-४-८० को १०८ अट्ठम उपरांत ९ उपवास की तपस्या करने वाली पू. साध्वी श्री भाग्यलताश्री तथा उस प्रसंग पर २१-१५-११-८ उपवास की तपस्या करने वालों का पारणा हुआ। उपरोक्त महा-महोत्सव श्री संघ के उत्साह के साथ शानदार संपन्न हुआ।

इस महोत्सव की पत्रिका भी आकर्षक सुन्दर नय-नरम्य निकाली गयी थी। श्री जालोर जिल्ले में यह पहला अनूठा प्रसंग हुआ।

(१५) गुडा बालोतान् (जिला जालोर) :-

शा मेघराज-प्रेमचन्द-कांतीलाल मनरुपजी फेनाजी तोगाणी द्वारा आयोजित श्री शंखेश्वर-शत्रुञ्जय महातीर्थ की बस यात्रा संघ प्रयाण वैशाख सुद-७ सोमवार दि. २१-४-८० को पूज्यपाद श्री की पावन निश्रा में हुआ। संघ प्रयाण के प्रसंग पर श्री सिद्धचक्र-ऋषिमंडल-भक्तामर महापूजन युक्त दशान्हिका-भव्य महोत्सव वैशाख (चैत्र) वद-१२ शनिवार दि. १२-४-८० से वैशाख शुद ७ सोमवार दि. २१-४-८० तक मनाया गया।

(१६) लेटा (जिला-जालोर) :-

श्री शान्तिनाथ जिन मंदिर तथा श्री श्रेयांसनाथ जिन मन्दिर इन दोनों जिन मन्दिर में श्री शान्तिनाथ भगवान, तथा श्री श्रेयांसनाथ भगवान, आदि जिन बिम्बों की परम पावन महामंगलकारी प्रतिष्ठा के निमित्त श्री अष्टोतरी शान्ति-स्नात्र युक्त श्री एकादशान्हिका महामहोत्सव वैशाख सुद ४ शुक्रवार दि० १८-४-८० से वैशाख सुद १३ सोमवार दि० २८-४-८० तक मनाया गया।

दोनों जिन मन्दिरों की प्रतिष्ठा वैशाख सुद द्वितीय १२ रविवार दि० २७-४-८० को अभूतपूर्व परम शासन प्रभावना पूर्वक सुसंपन्न हुई।

इस शुभ प्रसंग पर इतिहासवेत्ता. स्व. पू पंन्यास प्रवर श्री कल्याणविजयजी गणिवर्य म. के गुरु भ्राता पू. मुनि श्री सौभाग्यविजयजी गणि, पू. मुनि श्री मुक्तिविजयजी म. तथा पू. मुनि श्रीमित्र विजयजी म० भी उपस्थित थे।

(१७) कोसेलाव :–

श्री शन्तिनाथ जिनमन्दिर में श्री कोसेलाव संघ की ओर से श्री सिद्धचक्र महापूजन-अष्टादश अभिषेक-बृहद् अष्टोत्तरी-शान्ति स्नात्र युक्त श्री जिनेन्द्र भक्ति स्वरुप द्वादशान्हिका महा महोत्सव वैशाख सुद ११ शुक्रवार दि. २५-४-८० से प्रारम्भ हुआ, एवं अष्टोत्तरी प्रथम जेष्ठ (वैशाख) वद ५ सोमवार दि. ५-५-८० को पढाई गई।

इस महोत्सव में प्रतिदिन प्रातः करबा एवं दोनों टंक के कुल २२ स्वामीवात्सल्यादि विशिष्ट प्रकार के हुये थे। प्रस्तुत महोत्सव में संघ का उत्साह अनेरा था।

(१८) बाली :–

शा. तेजराज कपुरचन्दजी श्रीश्रीमाल की ओर से श्री सिद्धचक्र महापूजन, श्री पार्श्वनाथ भगवान के १०८ अभिषेक, श्री बृहद्अष्टोत्तरी शान्तिस्नात्र युक्त जिनेन्द्र भक्ति स्वरुप एकादशान्हिका महोत्सव के निमित्त प्रथम जेष्ट (वैशाख) वद १० शनिवार दि. १०-५-८० को प.

पू. आचार्य गुरुदेव श्री तथा पू. आचार्य श्री इन्द्रदिन्न-सूरीश्वरजी म. सा. आदि दोनों आचार्य भगवन्त आदि का अद्वितीय नगर प्रवेश तथा प्रथम जेष्ठ (वैशाख) वद ११ रविवार दि. ११-५-८० को अष्टोत्तरी स्नात्र पढाया गया।

शा. तेजराज कपुरचन्दजी श्रीश्रीमाल की ओर से बाली के ११०० घर में स्टील का ढकन सहित बेडा की प्रभावना की गई तथा दो स्वामीवात्सल्य भी हुये। इस महोत्सव में जलयात्रा का वरघोडा, तथा इलेक्ट्रीक रचनादि दर्शनीय था।

(१९) सादडी :-

शा. मांगीलाल धनराजजी बिदामिया की ओर से उनकी मातु श्री उमरावबाई ने की हुई श्री वीशस्थानक आदि विविध तप की आराधना के अनुमोदनार्थे २७ छोड के उद्यापन सहित श्री सिद्धचक्र-वीशस्थानक महापूजन श्री बृहद् अष्टोत्तरी शांतिस्नात्र युक्त महाहोत्सव प्रथम जेष्ठ (वैशाख) वद ८ गुरुवार दि. ८-५-८० से प्रथम जेठ सुद ४ रविवार दिनांक १८-५-८० तक मनाया गया।

जिसमें अष्टोत्तरी स्नात्र एवं स्वामीवात्सल्य प्रथम जेठ सुद ३ शनिवार दिनां १७-५-८० को हुआ।

(२०) लुणावा :-

शा. रुपाजी भगाजी गोलंक परिवार की ओर से ३१ छोड के उद्यापन सहित श्री वीशस्थानक महा पूजन तथा बृहद् अष्टोत्तरी शान्तिस्नात्र युक्त द्वादशान्हिका महोत्सव के निमित्त प्रथम जेष्ठ सुद ५ सोमवार दिनांक १९-५-८० को लुणावा प्रवेश। उस समय वहां बिराजमान पू. आचार्य श्री विजय इन्द्रदिन्नसूरीश्वरजी म. आदि का संमिलन हुआ।

प्रवेश के समय प्रथम गहूंलि पर महोत्सव कराने वाले की ओर से स्वर्ण मुहर रखी गयी थी। और भी विशेष प्रकार की विविध गहूंलिया बनाई थी। व्याख्यान में संघ पूजादि हुये थे।

प्रथम जेष्ठ सुद ९ शुक्रवार दिनांक २३-५-८० को श्री अष्टोत्तरीस्नात्र पढ़ाया गया, तथा महोत्सव में दो स्वामी वात्सल्य हुये थे।

लुणावा श्री संघ को श्री पद्मप्रभस्वामीजी के मन्दिर के विषय में मार्गदर्शन दिया गया।

(२१) सेवाड़ी :-

प्रथम जेठ सुद ७ बुधवार दिनाक २१-५-८० को सेवाड़ी संघ की विनंति से तथा पू. आचार्य श्री विजय इन्द्रदिन्नसूरीश्वरजी म. आदि के आग्रह से सेवाडी में दोंनो

पू. आचार्य भगवन्तों का साथ में प्रवेश प्रवचन हुआ। एवं श्री पंच कल्याणक पूजा भी पढाई गई थी।

सेवाडी श्री संघ को श्री शान्तिनाथ भगवान के मन्दिर के विषय में मार्गदर्शन दिया गया।

(२२) घणो :-

श्री जैन संघ की ओर से जिनेन्द्र भक्तिस्वरूप श्री सिद्धचक्र महा पूजन श्री बृहद् अष्टोत्तरी-शांति स्नात्र युक्त श्री अष्टाह्निका महोत्सव प्रथम जेष्ठ सुद ९ शुक्रवार दिनांक २३-५-८० से द्वि. जेष्ठ वद १ शुक्रवार दि. ३०-५-८० तक मनाया गया।

इस महोत्सव में प्र. जेष्ठ सुद १५ गुरुवार दिनांक २९-५-८० को अष्टोत्तरीस्नात्र एवं जेष्ठ वद १ शुक्रवार दि. ३०-५-८० को शा. प्रकाशचन्द जसराजजी की ओर से श्री पार्श्वनाथ १०८ अभिषेक पूजन का कार्यक्रम शानदार अनुमोदनीय रहा।

प. पू० आचार्य देव श्रीमद् विजय विकाशचन्द्रसूरीश्वरजी म. सा. के चातुर्मास हेतु पाली-चाणोद आदि स्थलों की विनती होने पर भी उन्हें तथा प. पू. उपाध्याय श्री विनोद विजयजी गणिवर्य म. सा. को चाणोद चातुर्मास की स्वीकृति पूज्यपाद गुरु भगवन्त ने प्रदान की।

(२३) लास का गुडा :-

द्वि. जेठ वद २ शनिवार दिनांक ३१-५-८० को शा· देवीचन्द मगनाजी धणी की ओर से धणी से पूज्यपाद गुरु-भगवन्त तथा चतुर्विध संघ के साथ लास का गुडा जाने का कार्यक्रम रखा था।

वहां उनकी ओर से श्री पार्श्वनाथ भगवान के १०८ अभिषेक, तथा स्वामीवात्सल्य रखा गया था। उस समय वहां के साधारण खाते में पूज्य श्री के उपदेश से करीब आठ हजार की टीप हुई।

(२४) खिमाडा :-

प· पू· आ· म· सा· की शुभ निश्रा में शा· भबूतमल अमीचन्दजी की ओर से श्री बालदा नाकोडा की बस यात्रा के उपलक्ष में द्वि· जेठ वद ५ मंगलवार दि· ३-६-८० को श्री ऋषि मंडल महापूजन पढाया गया। स्वामीवात्सल्य भी हुआ।

(२५) शिवगंज :-

विक्रम सं० २०३० वैशाख-६ को पूज्यपाद श्री की निश्रा में पीपलीवाली धर्मशाला के पास स्थित श्री मुनिसुव्रतस्वामी जिन प्रासाद में श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ चिंतामणी पार्श्वनाथ आदि मूर्त्ति एवं श्री अन्तरीक्ष पार्श्वनाथ तथा श्री नागेश्वर पार्श्वनाथ भगवान की काउस्सग्ग अवस्था में ध्यानस्थ मूर्त्ति आदि की प्रतिष्ठा हुई थी।

उस प्रतिष्ठा के पश्चात् फिलहाल वि० सं० २०३६ में उन दोनों खड़ी मूर्त्तियों में से अमिझरणे दीर्घ समय तक चालु रहे।

इस अनुमोदनीय प्रसंग के उपलक्ष में शा. पुखराज छोगमलजी की ओर से श्री पार्श्वनाथ के १०८ अभिषेक—अष्टादश अभिषेक, अष्टापद पूजा तथा श्री चिन्तामणी पार्श्वनाथ महापूजन युक्त द्वि० जेष्ठ वद ८ शुक्रवार दिनांक ६-६-८० से तीन दिवसीय भव्य कार्यक्रम आयोजित किया गया।

इधर भी प० पू० आ० श्रीमद्विजयइन्द्रदिन्नसूरीश्वरजी म० सा० आदि का सुभग संमिलन हुआ।

पू० पंन्यास श्रीभद्रानन्दविजयजी गणिवर्य आदि का भी संमिलन हुआ।

शिवगंज से विहार द्वारा पोसालीया, पालड़ी, कोलर, सिरोही, जावाल, पाडीव, वेलांगडी, सनवाडा, मालगाम आदि स्थलों में पधार कर तथा व्याख्यानादि का लाभ देकर, प० पू० आ० म० सा० आदि पांच ठाणे श्री जीरावला तीर्थ में पधारे। वहां पांच दिन की स्थिरता दरम्यान दो दिन पूजा का कार्यक्रम रहा।

(२६) **मंडार**–

वहां से श्री वरमाणतीर्थ में एक दिन स्थिरता कर दूसरे दिन सपरिवार **मंडार** पधारते हुए प० पू० आ०

म० सा० का श्रीसंघने स्वागत किया। अनेक गहुंलीओं हुई। प० पू० आ० श्रीमद्विजयमंगलप्रभसूरीश्वरजी म० सा० एवं प० पू० आ० श्रीमद्विजय अरिहंतसिद्धसूरिजी म० सा० आदि का सुभग संमिलन हुआ।

प० पू० आ० श्रीमद्विजयसुशीलसूरीश्वरजी म० सा० का मंगलाचरण एवं तात्त्विक प्रवचन होने के पश्चात् प० पू० आ० श्रीमद्विजयमंगलसूरीश्वरजी म० सा० का भी प्रवचन श्रवण करने का लाभ श्रीसंघ को मिला। सर्वमंगल. के बाद प्रभावना हुई। दोपहर में भी प्रभुपूजा प्रभावना युक्त हुई। एक साथ में तीन आचार्य भगवन्तों, साधु महात्माओं एवं साध्वी महाराजाओं के दर्शन-वन्दनादिक से तथा जिनवाणी का श्रवण से श्रीसंघ को अत्यन्त आनन्द हुआ।

वहां से पाथावाडा तथा कुचावाडा पधार कर खीमत पधारते हुए प० पू० आ० म० सा० का श्रीसंघने स्वागत किया। प्रवचन के पश्चात् प्रभावना हुई। दोपहर में प्रभु की पूजा भी प्रभावना युक्त हुई।

दूसरे दिन भी प्रवचन के पश्चात् प० पू० आ० म० सा० आदि संघयुक्त शा० दलसाभाई मंछालाल जोगाणी के घर पर स्वागत पूर्वक पधारे। वहां पर भी ज्ञानपूजन और मंगलाचरण के बाद संघपूजा हुई।

(२७) **पाटण शहर–**

वहां से भेरड़ा, नवा डीसा, आसेडा, वागडोल, चारुप-तीर्थ पधारने के पश्चात् **पाटण शहर** में पधारते हुए श्री संघने बेन्ड युक्त प० पू० आ० म० श्री का भारती सोसायटी से स्वागत किया। आगमोद्धारक स्वर्गीय प० पू० आ० श्री सागरानंदसूरीश्वरजी म० सा० के समुदाय के समर्थविद्वान् पन्न्यासप्रवर श्री अभयसागरजी गणिवर्य म० सा० आदि तथा शासनप्रभावक प० पू० आ० श्रीमद्विजयरामचन्द्र-सूरीश्वरजी म० सा० के समुदाय के संयमी पूज्य पंन्यास श्रीप्रद्योतनविजयजी गणिवर्य म० सा० आदि सामने पधारने से सबके आनंद में अभिवृद्धि हुई। श्रीपंचासरा पार्श्वनाथ प्रभु के दर्शनादि कर सागर के उपाश्रय में पधारे। वहां पर प० पू० आ० म० श्री का प्रवचन पश्चात् प्रभावना हुई।

दूसरे दिन सुबह स्वागत युक्त खेतरवशी का पाडा में पधारे। वहां 'श्रीभुवनविजयजी जैन पाठशाला' का इनाम मेलावडा के प्रसंग पर प० पू० आ० म० सा० का **'सम्यग्-ज्ञान की महत्ता'** विषय पर विशिष्ट प्रवचन होने के पश्चात् गणि श्री निरुपमसागरजी म० सा० का भी प्रवचन हुआ। धार्मिक शिक्षकादि के भी तद् विषयक वक्तव्य होने के बाद पाठशाला की बहिनों को इनाम देने का कार्यक्रम रहा। प्रान्ते प० पू० आ० म० सा० का सर्वमंगल के पश्चात् प्रभावना हुई।

दोपहर में सागर के उपाश्रय में प० पू० आ० मा० सा० का 'धर्म की महत्ता' पर जाहेर प्रवचन होने के बाद पूज्य पन्न्यास श्री अभयसागरजी म० सा० का भी प्रवचन हुआ। प्रान्ते सर्वमंगल० सुणा के प० पू० आ० म० सा० ने सपरिवार कुणगेर तरफ विहार किया।

सपरिवार पधारते हुए प० पू० आ० म० सा० का श्रीसंघने स्वागत किया। मंगलिक सुनाने के बाद प्रभावना हुई।

(२८) श्री शंखेश्वर तीर्थ–

वहां से हारीज, समी, बडी चांदुर पधारने के पश्चात् **श्रीशंखेश्वरतीर्थ** में पधारते हुए पेढी की ओर से प० पू० आ० म० सा० का स्वागत किया। छ दिन की स्थिरता दरम्यान प० पू० आ० म० सा०, पूज्य मुनिराज श्रीप्रमोदविजयजी म० सा० तथा पूज्य मुनिराज श्री जिनोत्तमविजयजी म० सा० ने श्रीशंखेश्वर पार्श्वनाथ प्रभु का अट्ठम तप विधिपूर्वक किया।

उनके उपलक्ष में पूज्य मुनिराज श्री प्रमोदविजयजी म० सा० के सदुपदेश से अषाढ शुद एकम रविवार दिनांक १३-७ १९८० को **'श्री चिन्तामणी पार्श्वनाथ महापूजन'** मालगाम निवासी शा० शान्तिलाल चुनीलालजी कटारीया की तरफ से पढाया गया।

अषाढ शुद २ सोमवार दिनांक १४-७-१९८० को **'श्रीसिद्धचक्रमहापूजन'** सादड़ी निवासी शा० रतनचन्द कुन्दनमलजी की ओर से पढाया गया।

इस पूजन में प० पू० आ० म० सा० के सदुपदेश से विधि में बैठे हुए सजोड़े श्री रतनचन्दजी के सुपुत्र शान्तिलाल ने श्रीनवपदजी का गीनी से पूजन किया और जीवदया की टीप में अपनी तरफ से ५०१) रुपये जाहेर किये।

विधिकारक धार्मिक शिक्षक श्री बाबुलाल मणीलाल भाभार वाले तथा विधिकारक नवयुवक श्री मनोजकुमार बाबुलालजी हरन (एम. कॉ.) सिरोही वाले ने ये दोनों पूजन श्रीशंखेश्वर पार्श्वनाथ प्रभु की छत्रछाया में और परमपूज्य आचार्यदेव श्रीमद्विजयसुशीलसूरीश्वरजी म. सा. की शुभ निश्रा में विधिपूर्वक सुन्दर पढायें।

(२९) **चाणस्मा-विद्यावाडी**–

वहां से विहार द्वारा मुजपुर, हारीज, कंबोई तीर्थ पधार कर अषाढ शुद १० मंगलवार दिनांक २२-७-१९८० को **जन्मभूमि चाणस्मा में चातुर्मास प्रवेश** करने के लिये, चाणस्मा स्टेशन के समीप आई हुई **विद्यावाडी** में जिनमन्दिर के दर्शनादि करके, शा. जयंतीलाल मंगलदास प्रेमचन्द के बंगले सपरिवार प० पू० आ० म० सा० ने

स्थिरता की । वहां पर दोपहर में प० पू० आ० म० सा० का तथा उनके लघु शिष्यरत्न पूज्य मुनिराज श्रीजिनोत्तमविजयजी म० सा० का सुन्दर प्रवचन हुआ। शा० कीर्तिलाल वाडीलाल की तरफ से संघपूजा हुई । विद्यावाडी जिन मन्दिर में संघ की तरफ से प्रभावना युक्त पूजा भी पढाई गई । ४८ वर्ष के बाद जन्मभूमि चाणस्मा नगर में प्रथम चातुर्मासार्थे पधारेल प० पू० आ० म० सा० का अभूतपूर्व स्वागत करने के लिए श्रीसंघने अनेरा उत्साह पूर्वक पूर्ण तैयारी की ।

:: प्राप्तिस्थान ::

[१] साहित्यसम्राट् साहित्यप्रचार केन्द्र
ठि० जीतेन्द्ररोड, आचार्य श्रीलावण्यसूरीश्वर
ज्ञानमन्दिर ट्रस्ट बिल्डिंग,
मु० मलाड (इस्ट), मुंबई-४०००६४

卐

[२] आचार्य श्रीसुशीलसूरि जैन ज्ञानमन्दिर
ठि० जैन बोर्डिग हाउस
शान्तिनगर, मु० सिरोही, राजस्थान (मारवाड़)

卐

[३] श्रीअरिहंत-जिनोत्तम-जैन ज्ञानमन्दिर
ठि० मल्लियों की शेरी
मु० जावाल जिला-सिरोही, राजस्थान (मारवाड़)

卐

[४] सरस्वती पुस्तक भण्डार
ठि० रतनपोल हाथीखाना
मु० अहमदाबाद-१, गुजरात.

卐

[५] जैन प्रकाशन मन्दिर
ठि०-३०/४ दोशीवाडानी पोल
खत्रीनी खड़की
मु० अहमदाबाद-१. गुजरात.